पहला हिन्दी उपन्यास

अग्रसेन - माधवी

लेखक :

डॉ. विष्णु पंकज (नागपुर)

प्रकाशक

अग्रचिंतन प्रकाशन

नागपुर

महाराजा अग्रसेन
अग्रवंश शिरोमणि

अग्रसेन-माधवी

महान समाजवादी महाराजा, गणतंत्र के प्रवर्तक,
अग्रोहा नरेश, वैश्य-अग्रवंश (अग्रवाल) प्रवर्तक
महाराजा अग्रसेनजी एवं महारानी माधवीजी
के जीवन पर पहला हिन्दी उपन्यास

□

लेखक
डॉ. विष्णु पंकज
(एम.ए., पी.एच.डी.)
जयपुर

卐

अग्रचिंतन प्रकाशन
सेन्ट्रल बाजार रोड, रामदासपेठ,
नागपुर-४४० ०१० (महाराष्ट्र)

अग्रसेन-माधवी
AGRASEN - MADHAVI

लेखक : डॉ. विष्णु पंकज

(एम.ए., पी.एच.डी.)

120/179, विजयपथ,
अग्रवाल फार्म, मानसरोवर,
जयपुर-302020 (राजस्थान)

प्रकाशक : अग्रचिंतन प्रकाशन

सेन्ट्रल बाजार रोड, रामदासपेठ
नागपुर-440 010 (महाराष्ट्र)
फोन : (0712) 2542193,
2556418

संस्करण : विशेष संस्करण- 2005

प्रतियां : 2000

मूल्य : 50/-रुपये

मुद्रक : महालक्ष्मी ऑफसेट प्रिंटर्स
सेन्ट्रल बाजार रोड, रामदासपेठ
नागपुर-440 010 (महाराष्ट्र)

सम्मतियां...

'अग्रसेन-माधवी' आपका यह सुंदर उपन्यास मैं देख गया. राजा अग्रसेन को लेकर नाना रूपकथाएं प्रचलित हैं।... आप एक अच्छा काम कर रहे हैं, करते रहिए।

-विष्णु प्रभाकर,
(अंतरराष्ट्रीय स्तर के अग्रवाल साहित्यकार)
दिल्ली

'अग्रसेन-माधवी' संभवतः महाराजा अग्रसेन पर पहला उपन्यास है। आपने इस उपन्यास की रचना से महाराजा अग्रसेन को साहित्य में प्रतिष्ठित कर दिया है। वे भारत के ऐसे सम्राट थे जिनसे भारत का आज का प्रजातंत्र शिक्षा ले सकता है। आपने इतिहास, पुराण तथा लोककथाओं के आधार पर महाराजा अग्रसेन एवं महारानी माधवी के जीवन-प्रसंगों को रचा है और इस औपन्यासिक चरित्र की सृष्टि की है जो पाठकों के मन में इतिहास-पुरुष का बिंब निर्मित करता है। अग्रवाल समाज उन्हें इतिहास का अंग मानता है और यही आस्था उन्हें निरंतर बलवती और लोकप्रिय बनाती है, पर आवश्यकता इस बात की भी है कि इतिहास के स्रोतों को खोजा जावे। इतिहास का साक्ष्य औपन्यासिक कृति को और भी प्रमाणित करेगा। अपनी इस कृति से अग्रवाल समाज के लिए एक नया द्वार खोला है और मुझे विश्वास है कि इसका सर्वत्र स्वागत होगा। पुस्तकें आपके भव्य व्यक्तित्व का प्रमाण हैं। आपने अग्रवाल समाज को गौरवान्वित किया है। आपके इतने व्यापक कृतित्व को देखकर आनंदित हूं।

-डॉ. कमलकिशोर गोयनका
एम.ए., पी.एचडी, डी.लिट
पूर्व प्रोफेसर, सांध्य पीजी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय
(वरिष्ठ साहित्यकार)
दिल्ली.

महाराजा अग्रसेन

भारत सरकार द्वारा २४ सितम्बर, १९७६ को
जारी स्मारक डाक-टिकट
(मुद्रित टिकटों की संख्या ८०,००,०००)

परम्परा के अनुसार प्राचीन काल में अग्र (आग्रेय) नाम का एक समृद्ध जनपद था, जिसकी राजधानी अग्रोदक थी। हिसार जिले (हरियाणा में अग्रोहा गांव के उत्तर-पश्चिम की ओर टीलों की एक श्रृंखला पाई गई है वहीं अग्रोदक का पुराना शहर स्थित था।

प्राचीन भारत के अन्य अनेक जनपदों की भाँति आग्रेय भी एक नगर-राज्य था। अनुश्रुति है कि राजा अग्र ही, जो बाद में अग्रसेन के नाम से ख्यात हुए, इस राज्य के संस्थापक थे। एक अनुश्रुति के अनुसार महाराजा अग्रसेन महाभारत-काल के आस-पास हुए थे। साहित्य दंतकथाओं और पुरातत्व सामग्रियों अर्थात् सिक्कों आदि के प्रमाणों से इस राज्य और इसकी शासन-व्यवस्था का पता चलता है।

महाराजा अग्रसेन मानते थे कि सब मनुष्य समान हैं और सबको समान अवसर मिलना चाहिए। उन्होंने अपने राज्य में समाजवादी ढंग से एक विशेष समाज का विकास किया था, जिसमें प्रत्येक नवागन्तुक को या उस व्यक्ति को, जो किसी कारणवश दिवालिया हो गया हो, आग्रेय जनपद का प्रत्येक निवासी एक-एक सिक्का और एक-एक ईंट देता था ताकि वह अपना निजी घर बना सके और कोई उद्योग या व्यापार शुरू कर सके। यह प्रथा पारस्परिक सहायता के सिद्धांत पर आधारित थी और यही आग्रेय की सर्वतोमुखी प्रगति का कारण था।

डाक-तार विभाग महाराजा अग्रसेन के सम्मान में एक विशेष डाक-टिकट निकालते हुए बड़ी प्रसन्नता का अनुभव कर रहा है।

डिजाइन का विवरण : डाक-टिकट की डिजाइन में महाराजा अग्रसेन का आवक्ष चित्र अंकित है। डिजाइन में अग्रोहा की खुदाई से प्राप्त एक सिक्के के दोनों पहलू और ईंट की एक दीवार के चित्र भी हैं।

MAHARAJA AGRASEN

Commemoration Stamp Issued by
Govt.of India on 24-9-1976
(Number of Stamps Printed - 80,00,000)

According to tradition there existed in days of yore a flourishing janapada named Agra (Agreya) whose capital was known as Agrodaka. A series of mounds found towards the north-west of Agroha village in Hissar district (Haryana) represent the site where the ancient city of Agrodaka was situated.

Like many other janapadas of ancient India, Agreya was also a city-state. Tradition ascribes the foundation of the state to one Raja Agra, later named as Agrasen. According to tradition Maharaja Agrasen lived around the period of Mahabharata. Evidence relating to this state and its rule has come to light through literature, legends and archaeological finds such as coins.

Maharaja Agrasen believed in euality of men and equal opportunity to all. He developed a particular kind of socialistic society in the state in which every new-comer or a person, who became insolvent due to any reason, was given coin and one brick by every inhabitant of Agreya Janapada. This enabled him to build his own house and start some industry or trade. This practice was based on the principle of mutual help and was the cause of all-round progress of Agreya.

The Posts and Telegraphs Department is happy to bring out a special postage stamp in honour of Maharaja Agrasen.

DESCRIPTION OF DESIGN

The design of the stamp depicts the bust of Maharaja Agrasen. The obverse and reverse sides of a coin and a brick wall found during excavations at Agroha are also shown in the design.

लेखकीय

यह उपन्यास महाराजा अग्रसेन और महारानी माधवी के पौराणिक-ऐतिहासिक स्वरूप, किंवदंतियों, अनुश्रुतियों और कल्पना के आधार पर लिखा गया है। यह इन सभी का समवेत-रूप है। विभिन्न इतिहासकारों और विद्वानों आदि के तद्विषयक मतभेदों अथवा लेखन-वैभिन्य को लेकर उलझना इस उपन्यासकार का मन्तव्य नहीं है। इसका उद्देश्य नायक-नायिका के गरिमामय स्वरूप की रक्षा करते हुए उनके चरित्र को पुरातन-नूतन ज्ञातव्य के साथ लोक-रंजन और सात्विक संस्कार-संप्रेषण की भावना के साथ उपन्यास विधा का निर्वाह करते हुए शिक्षाप्रद, मनोरंजक और ललित कृति का प्रस्तुतीकरण करना है।

प्रतापनगर कहां है, नागलोक कहां है, नागवंश क्या है, क्या महाराजा अग्रसेन द्वारा युद्ध करके देवराज इन्द्र को हराना और त्रेतायुग के परशुरामजी से युद्ध करना संभव है-आदि अनेक प्रश्न ऐसे हैं यदि उनमें उलझ जाएं तो लेखनी आगे नहीं बढ़ सकेगी। इसलिए लेखक कल्पना-सेतुओं के सहारे कथानक को आगे बढ़ाता गया है। लेखक ने पौराणिक चमत्कारों का भी सामान्यीकरण किया है। कल्पना से उनको व्यावहारिक रूप दे दिया है। फिर भी कथानक के ऐतिहासिक रूप को केन्द्र में रखा गया है। कल्पना का सहारा रचना को संपूर्णता, रोचकता और आलंकारिकता प्रदान करने के लिए ही किया गया है।

लेखक अपने उद्देश्य में कहां तक सफल हुआ है, रचना कहां तक ज्ञेय, रोचक, नूतन और अपेक्षाओं को पूर्ण करने वाली बन पड़ी है, इसका निर्णय तो सुधी पाठक ही करेंगे। उनकी सम्मतियों और सुझावों का लेखक स्वागत करेगा।

जिन महानुभावों की रचनाओं और विचारों से लेखक को सहायता मिली है, जिन महानुभावों ने लेखक को अन्य सहयोग प्रदान किया है, लेखक उन सबके प्रति हृदय से आभारी है। 'भविष्य पुराण' (महालक्ष्मी व्रतकथा, अग्रवैश्य वंशानुकीर्तनम्), 'उरुचरितम' और 'अग्रसेन-उपाख्यान' के रचनाकारों तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार, डॉ. परमेश्वरीलाल गुप्त, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, निरंजनलाल गौतम, रामलाल अग्रवाल, मुरारीलाल अग्रवाल, डॉ. श्यामसुंदर सुमन, डॉ. स्वराजमणि अग्रवाल, डॉ. चम्पालाल गुप्त, हरपतराय टांटिया, ओमप्रकाश गर्ग 'मधुप', अंजु गर्ग आदि के प्रति लेखक अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता है।

महान समाजसेवी-पत्रकार स्व. हरिकिसनजी अग्रवाल के सुयोग्य पुत्र श्री दुर्गाप्रसाद अग्रवाल, जो स्वयं जाने-माने पत्रकार और समाजसेवी हैं, विशेष धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने इस उपन्यास का 'अग्रचिंतन प्रकाशन' के माध्यम से रुचिपूर्वक प्रकाशन किया है। सुरुचिपूर्ण साहित्य प्रकाशन व समाजसेवा के क्षेत्र में उनका यह एक और कदम है।

☐ जयपुर, (राजस्थान)

-डॉ. विष्णु पंकज

❖ प्रकाशकीय ❖

डॉ. विष्णु पंकज (अग्रवाल) रचित 'अग्रसेन-माधवी' एक जीवनपरक उपन्यास है, जिसमें अग्रवाल कुलपिता महाराजा अग्रसेनजी तथा महारानी माधवीजी कथा के केन्द्रीय चरित्र हैं। हिन्दी में डॉ. रांगेय राघव ने जीवनीपरक उपन्यासों की रचना का सूत्रपात किया था। बाद में अमृतलाल नागर ने तुलसीदास 'मानस का हंस' तथा सूरदास 'खंजन नयन' के जीवन को आधार बनाकर उपन्यास लिखे। डॉ. प्रतिमा अग्रवाल ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पर आधारित उपन्यास लिखा है। इधर के वर्षों में गिरिराज किशोर रचित 'पहला गिरमिटिया' महात्मा गाँधी के चरित्र के आधार पर लिखा गया महत्वपूर्ण उपन्यास माना जा रहा है। 'अग्रसेन-माधवी' इसी परम्परा की एक महत्वपूर्ण कड़ी है, जिसे पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष और अमिट गौरव की अनुभूति हो रही है। अग्रसेनजी के जीवन पर संभवतः यह प्रथम उपन्यास है। इस दिशा में अन्य कथाकार भी सक्रिय होकर अपनी महद् औपन्यासिक रचनाओं से हिन्दी साहित्य का भंडार भर सकते हैं। यह रचना यदि सुधी लेखकों के भावलोक में सुगबुगाहट पैदा कर सकी तो प्रस्तुत प्रकाशक निज श्रम को सार्थक मानेगा। हमें विश्वास है कि लेखक इस चुनौती को अंगीकार कर अपनी रचनात्मक प्रतिभा को सार्थकता प्रदान करेंगे।

हमारे यहाँ इतिहास को मिथक बना डालने की प्रवृत्ति रही है, इसलिए नागवंशी आर्येतर समाज के सदस्य नाग (सर्प) मान लिए गए। देवताओं की नगरी अमरावती (स्वर्ग) आकाश में स्थित मान ली गई, जबकि देव जाति के सदस्य भोग-विलास में डूबे हुए थे, इन्द्र उन्हीं के राजा थे। जयशंकर प्रसाद ने इसी देव-जाति को आधार बनाकर अपने महाकाव्य 'कामायनी' की रचना की। वे इन्द्र को आधार बनाकर महाकाव्य लिखने की योजना बना रहे थे, लेकिन भाग्य-नियंता ने उन्हें यह अवसर प्रदान न किया। उनके लिए वक्त खत्म हो चुका था।

डॉ. चम्पालाल गुप्त के अनुसार महाराजा अग्रसेन का जन्म महाभारत के बाद हुआ। विद्वानों ने महाभारत का काल-निर्धारण कर लिया है। उस आधार पर महाराजा अग्रसेन का काल भी निश्चित किया जा सकता है। डॉ. विष्णु पंकज ने अपने उपन्यास की रचना हेतु सभी उपलब्ध स्रोतों का उपयोग किया है। मिथकों को समाजशास्त्रीय दृष्टि से विश्लेषित करने की पद्धति का भी उन्होंने सहारा लिया है। अग्रवाल-समाज में प्रचलित विभिन्न रीति-रिवाजों एवं संस्कारों की पृष्ठभूमि भी स्पष्ट की गई है। लेखक परमपूज्य महाराजा अग्रसेन की शासन व्यवस्था, शूरवीरता, प्रजा-वत्सलता, दूरदृष्टि एवं सही निर्णय लेने की क्षमता आदि सद्गुणों को भी रूपायित करने में सफल हुआ है। महारानी माधवी के चरित्र से महाराज का चरित्र परिपूर्णता प्राप्त करता है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। आशा है समाजवादी महाराजा अग्रसेन के प्रति श्रद्धा-भाव एवं आदर रखने वाले सभी साहित्य प्रेमी जन इस कृति को अवश्य पढ़ना चाहेंगे।

उल्लेखनीय है कि पौराणिक इतिहास एवं पुरातात्विक खोजों पर आधारित यह 'अग्रसेन-माधवी' उपन्यास अल्पकाल में ही इतना लोकप्रिय साबित हुआ कि हमें अपने पाठकों के आग्रह पर इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित करना पड़ा है। स्वभावतः यह दूसरा संस्करण आकार व स्वरूप में अपने पूर्ववर्ती संस्करण की अपेक्षा अधिक आकर्षक है। हमें प्रसन्नता है कि समाज की नई पीढ़ी ने इस उपन्यास को अपने प्रमुख प्रेरणास्रोत के रूप में स्वीकार किया है। महाराज अग्रसेन द्वारा प्रतिपादित जीवन मूल्यों का अनुकरण कर भला कौन सुखी एवं समृद्ध नहीं हो सकता। हमें पूर्ण विश्वास है कि इस विशेष संस्करण के बाद भी 'अग्रसेन-माधवी' की मांग जारी रहेगी। शीघ्र ही पुस्तकालयों के उपयुक्त आकार एवं प्रकार में भी इसका संस्करण प्रकाशित होगा हम अपने पाठकों की प्रतिक्रियाओं का सम्मान करेंगे एवं हमारे अन्य प्रकाशनों में उपयुक्त स्थानों पर उनका उल्लेख करेंगे।

-दुर्गाप्रसाद हरिकिसन अग्रवाल
अग्रचिंतन प्रकाशन, नागपुर

इसी उपन्यास से.....

"बुद्धि, शक्ति, धन और सेवा ये चारों ही वृत्तियां समाज के लिए आवश्यक हैं, तभी समाज अपेक्षित प्रगति कर सकता है। यदि केवल बुद्धि और शक्ति को ही महत्व दिया जाएगा तो समाज अपेक्षित गति से आगे नहीं बढ़ सकता। धन समाज के लिए ऊर्जा के समान है। ऊर्जाहीन समाज न तो बुद्धिमान हो सकता है और न शक्तिवान ही। समाज उपयुक्त समन्वय, सामंजस्य से ही सही अर्थों में ऊर्जावान हो सकता है। ऊर्जा से बुद्धि बढ़ती है, शक्ति बढ़ती है। बुद्धि सुख, सुविधा, शान्ति के लिए नये-नये उपाय खोजती है। शक्ति समाज की रक्षा करती है। जब तक सेवा-भाव नहीं होगा, ये तीनों वृत्तियां सार्थक नहीं। किसी भी वृत्ति की उपेक्षा करना उचित नहीं है। अभी तक बुद्धि और शक्ति को ही श्रेष्ठ माना गया है। साधन-संपन्नता, श्रम और सेवा-भाव भी उतने ही श्रेष्ठ हैं।"

-महाराजा अग्रसेन

एक

प्रतापनगर दृषद्वती और वितस्ता नदियों के बीच हिंसारि जनपद के निकट उन्नीस जनपदों का एक राज्य था, जहां इक्यावन शतक पूर्व राजा वल्लभसेन राज्य करते थे। नदी-पार विशाल वनप्रदेश था, जहां गर्ग मुनि का विशाल, रमणीक और शान्त आश्रम था। वनप्रदेश कुरुजांगल कहलाता था।

राजा वल्लभसेन बड़े ही शूरवीर, धर्मात्मा और प्रजावत्सल थे। उनके राज्य में जनता सुखी और समृद्ध थी। उनके पूर्वजों ने नेपाल, वृन्दावन, मधुपुर (मथुरा) और गुर्जरदेश बसाए थे। प्रतापनगर राज्य भले ही अतिविशाल नहीं था, परन्तु उसकी ख्याति बहुत थी। प्रतापनगर के पूर्व में पंचालदेश था।

दृषद्वती और सरयू का संगम 'स्वर्गद्धार' कहलाता था, जिसके उत्तर में देवपुर राज्य था, जहां देवराज इन्द्र राज्य करते थे। यह हिमाचल में मण्डी जनपद के उत्तर में ऊपर की ओर था। अनेक नदियों के उद्गम-स्थल उस राज्य में थे। देवपुर को 'द्यूलोक' और 'स्वर्गलोक' भी कहते थे। वहां प्रकाश की अत्यधिक व्यवस्था थी, सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश था- राजप्रासादों में, भवनों में, सड़कों-चतुष्पथों पर और सभी जगह। इसलिए वह द्यूलोक या स्वर्गलोक कहलाता था। देवपुर के निवासी श्रेष्ठ जाति के मनुष्य ही थे, जो अपने को देवजाति का, मनुष्यों से पृथक और श्रेष्ठ मानते थे, वे दैत्यों के सौतेले भाई थे। अनेक चमत्कारी विद्याओं के स्वामी देवगण षट्रसप्रेमी, कलानुरागी, सुखसुविधा-भोगी, विद्धान, ईश्वरभक्त और विलासप्रिय थे। वे नीचे के मैदानी क्षेत्र को भूलोक, दक्षिणी क्षेत्र को पाताललोक और अपने क्षेत्र को देवलोक मानते थे। समुद्र-मंथन में प्राप्त अमृत को पीकर वे स्वयं को अमर कहते थे। इन्द्र-दरबार में अनेक अप्सराओं का भी वर्चस्व था, जिनका मनमोहक नृत्य और सान्निध्य देवों को प्रिय था।

प्रतापनगर के अधिकांश निवासी कृषि, गोपालन और व्यापार-कार्य करते थे। वे बड़े धीरवान, व्यवहार-कुशल, गो-सेवक और धर्म-परायण थे। राजा के प्रति सम्मान, वरिष्ठजनों के प्रति आदर और निर्बल जनों के प्रति उनका करुणा तथा सेवा का भाव था। वे विद्यानुरागी, सहिष्णु और सहृदय जन थे।

द्वापर-युग की अंतिम शती का सोलहवां वर्ष चल रहा है। आज आश्विन शुक्ला की प्रतिपदा है। नवरात्र का शुभारम्भ है। राजकक्ष में महाराज वल्लभसेन का दरबार लगा हुआ था। महाराज सिंहासन पर विराजमान थे। उनके समक्ष महामात्य, पुरोहित, सेनापति, भांडागारिक, विनिश्चयामात्य, रज्जुक आदि बैठे हुए थे। द्रोण-मापक, हिरण्यक, सारथी, दौवारिक, नगरगुक्तिक, परिचारिक, प्रहरी, द्वारपाल, परिचारिकाएं आदि सभी की यथास्थान उपस्थिति थी। राजकक्ष अत्यंत भव्य और अलंकृत था।

तभी गर्ग मुनि का दरबार में प्रवेश हुआ। महाराज और दरबार में उपस्थित सभी जनों ने उठकर उन्हें प्रणाम किया। महाराज ने उनके चरण स्पर्श कर आदर

सहित उन्हें पास वाले आसन पर बैठाया।

गर्ग मुनि बोले- 'राजन, आपका कल्याण हो शीघ्र ही आपको शुभ-समाचार प्राप्त होने वाला है। हम इसी निमित्त यहां आए हैं।'

महाराज ने उत्तर दिया- 'आपके कृपापूर्ण वचनों से मैं कृतार्थ हुआ देव!'

तभी चिकित्सामात्य ने दरबार में उपस्थित होकर निवेदन किया- 'महाराज की जय हो। महारानी ने एक तेजस्वी बालक को जन्म दिया है। मैं अभी प्रसूतिका-कक्ष से समाचार लेकर आ रहा हूं।'

महाराज ने हर्षित होकर कहा- 'अमात्य, इस सुखद समाचार से श्रद्धेय गर्ग मुनि, मैं और सभी दरबारी जन अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं। आप स्वयं वहां जाकर यह समाचार लाए हैं, यह और भी प्रसन्नता की बात है। आप अपना स्थान ग्रहण कीजिए।'

चिकित्सामात्य गर्ग मुनि को प्रणाम करके अपने आसन पर बैठ गए। महाराज ने मुनि के पुनः चरण स्पर्श किए और अपने सिंहासन पर बैठ गए।

गर्ग मुनि बोले- 'राजन, मुझे इस शुभ-संवाद का पूर्वाभास था। इसीलिए, मैं यहां विशेष रूप से आया हूं। राजन्, यह बालक अत्यन्त तेजस्वी महाराजा बनेगा। यह एक नगर बसाएगा और साम्राज्य का विस्तार करेगा। अश्वमेध यज्ञ करके यह सम्राट की पदवी प्राप्त करेगा। मेरा आशीर्वाद बालक के साथ है।'

ऐसा कहकर और राजा को भी आशीर्वाद देकर मुनि चले गए।

महाराज हर्षातिरेक में बोले- 'आज हम अत्यन्त प्रसन्न हैं। जनता में भोजन और मिष्ठान वितरण किया जाए। भोज-प्रासाद में विशेष वृहदाहार का प्रबन्ध किया जाए। पुरोहितों को विशेष दक्षिणा, वस्त्रादि भेंट किए जाएं। ब्राह्मणों को यथेष्ट दान दिया जाए। इस अवसर पर सभी उपयुक्त आयोजन सोल्लास संपन्न हों। राजपुरोहित को बुलाकर नामकरण-संस्कार कराया जाए।'

महाराजा ने राजसभा विसर्जित कर दी। सभी अमात्यादि व्यवस्थाओं में संलग्न हो गए। महाराज सबसे पहले प्रसूतिका-कक्ष की ओर गए। उन्होंने एक स्वर्णमाल मुख्य प्रसूतिका को भेंट की। महारानी और नवजात शिशु को निहारा और अपने कक्ष की ओर बढ़ गए।

कुछ दिन निकल गए। आज समूचे प्रतापनगर में हर्षाल्लास का वातावरण है। घर-घर में मंगल गीत गाए जा रहे हैं। राज्य में अपूर्व आनंद छाया है। वंदनवार बंधे हैं। ध्वजा फहराई गई है। मंगल-वाद्य बज रहे हैं। सार्वजनिक स्थानों पर राजगायक वाद्य-वृन्द के साथ मंगलाचरण गा रहे हैं। एक-दूसरे को बधाई और मिष्ठान दे रहे हैं। प्रजाजन को अपूर्व आनंद का अनुभव हो रहा है। ब्राह्मणजन राजपुत्र को चक्रवर्ती सम्राट होने का आशीर्वाद दे रहे हैं।

नामकरण-संस्कार के समारोह में राजपुत्र का नाम 'अग्र' रखा गया जो आगे चलकर 'अग्रसेन' हो गया। महाराज ने सभी को भरपूर धनधान्य, वस्त्राभूषण आदि भेंट किए। राजमहल, पुर और जनपद में सर्वत्र उल्लास का वातावरण था।

पुत्र-जन्म के हर्ष में महाराज वल्लभसेन ने मधुपुर से बारह कोस दूर यमुना नदी के किनारे एक नया नगर बसाया, जिसका नाम राजपुत्र के नाम पर 'अग्रपुर' रखा गया, जो बाद में 'आगरा' कहलाया। इसमें भव्य प्रासाद, गढ़, जनता के लिए भवन, सड़कें, उद्यान- सभी का निर्माण किया गया। जल और प्रकाश की समुचित व्यवस्था की गई। आसपास के प्रजाजन वहां आकर रहने लगे।

राजपुत्र का लालन-पालन बड़े लाड़ से किया गया। वे बचपन से ही बड़े प्रतिभाशाली थे। बड़े होने पर प्राचीन विद्या-परंपरा के अनुसार राजकुमार अग्रसेन को वेदशास्त्र, राजनीति, अर्थनीति आदि के साथ, घुड़सवारी, विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों की समुचित शिक्षा भी दी गई। अग्रसेन शीघ्र ही सभी विद्याओं में पारंगत हो गए। तीर द्वारा उनका लक्ष्य-वेध अचूक था। अन्य अस्त्र-शस्त्रों के संचालन में भी वे दक्ष हो गए।

□□□

दो

महाराज वल्लभसेन जब अतिवृद्ध हो गए तो उन्होंने प्रतापनगर का राज्य अपने योग्य पुत्र अग्रसेन को सौंप दिया और वन में तपस्या करने चले गए। राजकुमार अग्र अब महाराज अग्रसेन कहलाने लगे। वे बड़ी योग्यता के साथ राजपाट चलाने लगे। उनके शासनकाल में भी जनता अत्यन्त सुखी और समृद्ध थी। महाराज तब पैंतीस वर्ष के थे। द्वापर युग पूर्ण होने में अर्द्धशती शेष थी।

कुछ वर्षों पश्चात् महाराज वल्लभसेन का निधन हो गया। महाराज अग्रसेन ने उनका विधिवत् श्राद्ध और तर्पण किया, परन्तु वल्लभसेन ने उन्हें ग्रहण नहीं किया। अग्रसेन चिन्ता में पड़ गए। उनकी समझ में कुछ नहीं आया। अगली बार उन्होंने पुरोहितों की सहायता से फिर विधिवत् पूजा, व्रत, अनुष्ठान का प्रबन्ध किया। इस बार उन्होंने गौड़ग्राम के अतिरिक्त गौड़देश से भी वेदज्ञ ब्राह्मणों और विशिष्ट अनुष्ठानकर्त्ताओं को भी बुलाया था। सभी यह चाहते थे कि महाराज वल्लभसेन की आत्मा मोक्ष को प्राप्त करे। महाराज अग्रसेन बहुत चिन्तित और व्यग्र थे। एक समय जब वे सुसुप्तावस्था में थे तो पिताश्री वल्लभसेन ने स्वप्न में आकर उनसे कहा- 'वत्स, तुमने मेरी मुक्ति के लिए जो कुछ प्रबन्ध किया है, वह निरर्थक है। एक ब्राह्मण-कन्या के श्राप के कारण मेरी मुक्ति नहीं हुई है। मेरी आत्मा भटक रही है।'

महाराज अग्रसेन ने पूछा- 'पिताश्री, कौन ब्राह्मण कन्या ? कैसा शाप ? उसका कारण और उपाय ? समझाकर कहिए।'

अग्रसेन की बात सुनकर वल्लभसेन बोले- 'वत्स, एक बार मैं नदी किनारे जा रहा था। वहां मैंने एक ब्राह्मण कन्या को स्नान करते देखा तो मैं उसका अनुपम सौन्दर्य देखकर विस्मित रह गया। मैंने सोचा कि काश, यह सुन्दर कन्या मेरी पुत्री

होती। मैं प्रसन्नतापूर्वक इसका विवाह किसी बड़े राज्य के ऐसे ही सुन्दर राजकुमार के साथ अपने हाथों से करता। उधर उस ब्राह्मण कन्या को भ्रम हो गया कि मैं उसे अन्य भाव से देख रहा हूं। उसने मुझे प्रेतयोनि का श्राप दे दिया। जब उसे वास्तविकता का पता चला तो वह बहुत पछताई। श्राप तो टल नहीं सकता था परन्तु उसने प्रेत-मुक्ति का उपाय बता दिया। उसके अनुसार लोहगढ़ तीर्थ पर जाकर पिंडदान करो तो मेरी मुक्ति हो जाएगी।'

अग्रसेन महाराज की तन्द्रा टूट गई। स्वप्न के विषय में उन्होंने पुरोहितों से परामर्श किया। पिताश्री के श्राद्ध-दिवस पर वे पुरोहितों, मंत्रियों आदि के साथ लोहगढ़ गए। वहां उन्होंने विधिपूर्वक कर्मकाण्ड, यज्ञ, तर्पण, श्राद्ध-कार्य किए। पिताश्री के बताए अनुसार पिण्डदान किया तो महाराज वल्लभसेन ने स्वयं प्रकट होकर उसे ग्रहण किया और अंतर्धान हो गए। वे प्रेतयोनि से मुक्त हो गए। वे बैकुण्ठ चले गए।

□□□

तीन

पिण्डदान करने के पश्चात् जब महाराज अग्रसेन लोहगढ़ से वापस लौट रहे थे तो हिंसारि प्रदेश से पूर्व उन्होंने विशाल और सुन्दर भूमि और उसके समीप वनप्रदेश देखा। साम्राज्य-विस्तार की इच्छा उनके मन में पहले से ही थी, परन्तु वे युद्ध और जनसंहार करके साम्राज्यवृद्धि नहीं करना चाहते थे। एक नया नगर बसाने का विचार उनके मन में आया। वहां जल-स्रोत भी था। उन्होंने पुरोहितों-मंत्रियों से मंत्रणा की। उन्हें ज्ञात हुआ कि वहां आसपास के निवासी बड़े परिश्रमी और वीर थे। इन्द्रप्रस्थ, गौड़धाम, अग्रपुर, मयराष्ट्र, नाभा, रोहितोदक, पुण्यपत्तन, करणालय, नगरकोट, मंडी, लवकोट, गढ़वाल, मालवा, जांगलदेश, नारिनवल आदि जनपदों की ओर उस स्थान से जाया जा सकता था।

सबसे पहले उन्होंने जलस्रोत को विशाल सरोवर का रूप दिया और उसे पक्का कराया। पुरोहितों ने उस वनप्रदेश का नाम 'अग्रवन', सरोवर का नाम 'अग्रोदक' रंखा। नगर का नाम भी यही पड़ गया, जो बाद में 'अग्रोहा' कहलाने लगा। महाराज अग्रसेन के इस नए राज्य में आसपास के अनेक जनपद सम्मिलित हो गए। राज्य का नाम 'आग्रेयगण' हो गया और उसकी राजधानी अग्रोहा बनी।

अग्रोदक अर्थात् अग्रोहा नगर बीस सहस्र बीघा क्षेत्र में बसाया गया। उसके चारों और पक्की चारदीवारी बनाकर उसे सुरक्षित बनाया गया। दीवार के सहारे खाई खोदकर उसमें जल भरा गया। नगर में प्रवेश के लिए विशाल सिंहद्धार बनाया गया। उसके साथ-साथ गुप्तद्धार भी थे, जिनका विशेष उपयोग शत्रु के आक्रमण के समय किया जा सकता था। नगर की सुरक्षा-व्यवस्था सुदृढ़ थी।

नगर-नियोजन और वास्तुशास्त्र को ध्यान में रखकर मुख्य किला, अन्य दुर्ग, राजप्रासाद, भव्य और विशाल अट्टालिकाएं, सुन्दर भवन, उद्यान, चतुष्पथ,

सड़कें और नगरचौक बनाए गए। उद्यानों को फलदार वृक्षों और रंग-बिरंगे सुवासित पुष्पों के पौधों से आच्छादित किया गया। स्थान-स्थान पर फव्वारे लगाए गए। सभी स्थानों पर जल और प्रकाश उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई। निवास-स्थानों के अतिरिक्त सार्वजनिक स्थानों पर भी जल और प्रकाश की व्यवस्था राज्य की ओर से की गई। नगर अत्यन्त सुन्दर बन गया। इसमें एक लाख घर थे जो बाद में बढ़ते ही गए। आरम्भ में नगर की जनसंख्या लगभग पांच लाख रही होगी।

महाराज अग्रसेन ने नगर में चौबीस नए तालाब और छत्तीस छोटे बांध बनवाए। एक हजार तीन सौ साठ कुएं भी खुदवाए गए। चारों तरफ चार किले बनवाए गए। सोलह मुख्य द्वार और बाजार भी थे। नगर के बीचों बीच महालक्ष्मी का विशाल मंदिर बनवाया गया, जिसमें विराजी महालक्ष्मी की पूजा-अर्चना आठों प्रहर होती थी। एक स्थान पर चक्रधारी वराह भगवान की मूर्ति स्थापित की गई, जिनका बायां पैर कमल पर है, कमल के नीचे नाग सर्प है। महिषमर्दिनी देवी की भी मूर्ति एक

स्थान पर है। यक्षायतन (यक्ष-मन्दिर) में यक्षराज कुबेर की विशाल मूर्ति है। स्थान-स्थान पर अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियां हैं। नगर में सर्वत्र आर्थिक-आध्यात्मिक वातावरण है।

'महालक्ष्मी व्रतकथा' के अनुसार- 'हरिद्वार से पश्चिम की ओर चौदह कोस की दूरी पर गंगा-यमुना के बीच (अंतर्वेद प्रदेश) अत्यन्त पुण्य स्थान पर, जहां शक्र (वज्रधारी इन्द्र) को (राजा अग्रसेन ने) वश में किया था (पराजित किया) था, राजा अग्र ने 'अग्रनगर' की स्थापना की। यह नगर द्वादश योजन विस्तीर्ण व शुभ है। उस समय द्वापर का अंत हो चुका था। वहां राजा ने अपने वंश का विस्तार किया और जातियों का सब प्रकार से संवर्धन किया। वहां करोड़ों मुद्राएं लगाईं। बड़े सुखदायक महलों की पंक्तियां बनाई गईं, गलियां, चतुष्पथ (चौराहे), उपवन, पुष्पों के उद्यान, कमलों से सुशोभित सरोवर, देव-मन्दिर, बावड़ियां आदि बनवाई गईं। वे गोपुर और द्वारों से सुशोभित थीं। पारावत, सारस, हंस, सारिका, मयूर, कोयल आदि विविध सुन्दर पक्षियों के समूह वहां कलख करते रहते थे। वृक्ष फूलों, फलों और पत्तों से सुशोभित थे। वह विशाल पुरी (नगर) हाथी-घोड़ों से शोभित थी और स्वर्ण-रत्न आदि से परिपूर्ण थी। वहां बहुत यज्ञ होते थे। वह धन-धान्य से भरी हुई थी मानो इन्द्रदेव की अमरावती ही पृथ्वी पर आ गई हो।'

□□□

चार

उस समय संसार भर में छोटे-छोटे राज्य थे। यूनान देश में ऐसे राज्य 'नगर राज्य' कहलाते थे। भारत वर्ष में ऐसे राज्य 'गण' अथवा 'संघ' आदि कहे जाते थे। राज्य के मध्य में 'पुर' या राजधानी होती थी। उसके चारों ओर 'जनपद' होता था। देव-मन्दिर, व्यापार-केन्द्र, मनोरंजन-स्थल आदि होते थे। भवन, राजप्रासाद, गढ़ आदि तो होते ही थे। संपन्न नागरिक पुर में तथा सामान्य लोग जनपद में निवास करते थे। कृषि, गृहोद्योग आदि प्रमुख व्यवसाय थे। कुछ लोग राज-सेवा अथवा सम्पन्न व्यक्तियों के यहां सेवा-कार्य करते थे। राज्य का संचालन पुर से ही होता था। सुरक्षा की दृष्टि से प्रायः पुर के चारों ओर ऊँची दीवार थी जो गहरे पानी से परिपूर्ण खाई से घिरी रहती थी। कृषकजन जनपद में रहकर कृषि-कार्य करके अपना जीवन-निर्वाह करते थे। देव-मन्दिरों में निरन्तर पूजा-अर्चना होती रहती थी तथा देवी-देवताओं का जयघोष गूंजता रहता था। बाजारों में क्रेता-विक्रेताओं की बड़ी चहल-पहल रहती थी। अग्रोहा इसी प्रकार का एक अग्रणी पुर था। महाराज अग्रसेन ने प्रतापनगर का राज्य अपने अनुज शूरसेन को स्वेच्छा से दे दिया।

अग्रश्रेणी संविधान के अनुसार 'अग्र' जनपद महासभा में १८ कुलों के प्रतिनिधि कुलपति, स्थविर अथवा व्रात्य कहलाते थे। कुलपिता को गोत्र के नाम से जाना जाता था। 'गर्ग' गोत्र का प्रतिनिधि 'गार्ग्य' कहलाता था। कभी-कभी आवश्यक समझे जाने पर दूसरा (युवा प्रतिनिधि) भी किसी कुलपिता के साथ भेज दिया जाता था। वह गर्ग कुल के प्रतिनिधि के रूप 'गार्ग्यागण' कहलाता था। वह अर्द्ध-प्रतिनिधित्व करता था। पृथक्-पृथक् कुल के लिए पृथक्-पृथक् नाम थे। दूसरा प्रतिनिधि तब भेजा जाता था जब कुलपिता अतिवृद्ध हो अथवा उससे कुल में मतभेद उत्पन्न हो जाए।

'अग्र' जनपद में संघीय शासन-प्रबन्ध था। इस संघीय व्यवस्था में कोई आजीवन शासक अथवा राजा नहीं होता था। वहां समय-समय पर राजा का चुनाव महासभा करती थी। संघ-शासन को 'पारमेष्ठ्य' राज्य भी कहा जाता था। इस व्यवस्था के अन्तर्गत सभी प्रतिनिधि अपना एक नेता चुनते थे जो राज्य के सबसे ऊँचे आसन पर बैठता था, इसी कारण वह पारमेष्ठ्य कहलाता था। वह संघ-सभा का अधिपति या महाव्रात्य (महासभाध्यक्ष अथवा लोकसभाध्यक्ष) होता था।

अग्रोहा को राजधानी बनाने का कार्य सर्वथा बुद्धिमत्तापूर्ण और तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल था। पंचनद प्रदेश सदैव हरा-भरा, धनधान्यपूर्ण और भव्य रहा है। यहां की शस्य-श्यामला भूमि और समृद्धि विदेशियों का आकर्षण केन्द्र रही तथा उस पर समय-समय पर आक्रमण होते रहे थे। इस प्रकार के आक्रमणों के वातावरण में प्रजा के लिए सुख-शांतिपूर्ण राज्य की स्थापना और उसके सर्वतोमुखी विकास एवं कल्याण की कल्पना अग्रसेन जैसे प्रजावत्सल राजा ही कर सकते थे। अग्रोहा को बाह्य-आक्रमण से बचाने के लिए उन्होंने जल-मार्ग से दूर भीतरी भू-भाग को चुना, जिससे आक्रमणकारी सहज ही वहां न पहुंच सकें। पेयजल और कृषि कार्य के लिए जल की उपलब्धता भी आवश्यक थी। इस क्षेत्र में पर्याप्त भूमिगत जल-स्रोत थे।

महाराज अग्रसेन ने लोकतंत्र पर आधारित राजतंत्रीय शासन चलाया। वे राज्य को जनता की धरोहर मानकर उसका शासन-तंत्र चलाते थे। वे विश्व के प्रथम समाजवादी राजा थे। उन्होंने सिक्के भी चलाए। विद्या का समुचित प्रसार किया। उनका राज्य नैतिकता से पूर्ण धर्म का राज्य था। धनी-सामान्य, छोटे-बड़े का और जातिगत कोई भेद-भाव नहीं था। ब्राह्मण विद्वान, मार्गदर्शक और त्यागी, क्षत्रिय वीर और रक्षक, वैश्य सच्चे और परोपकारी तथा सेवकजन विनीत और सेवाभावी थे। सबमें परस्पर सौहार्द था। अत्याचार, अनाचार, दुराचार कतई नहीं थे। कुछ राज-परिवारों में बहुपत्नी-प्रथा का प्रचलन था, परन्तु स्त्रियां सती-धर्म (एकपति-व्रत) का पालन करती थीं।

अपने साम्राज्य को सुसंचालित, संगठित और सुदृढ़ बनाने के लिए महाराज अग्रसेन ने अठारह गणों की स्थापना कर केन्द्रीय शक्ति और सत्ता को अग्रोहा में

निहित किया। अठारह गण थे- अग्रोदक (अग्रोहा), अग्रपुर (आगरा), इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली), गौड़ग्राम (गुड़गांव), मयराष्ट्र (मेरठ), रोहितोदक (रोहतक), हिंसारि (हिसार-हांसी), पुण्यपत्तन (पानीपत), करणालय (करनाल), नगरकोट (कोटकांगड़ा), लवकोट (लाहौर), मण्डी, बिलासपुर, गढ़वाल, जींदसपुरम (जींद), नाभा, नारिनवल और अग्रश्रेणी। राजगायक भाटराजा इन गणों में तोशाम, सिरसा, कैथल, सहारनपुर, जगधारी, विधिनगर, अमृतसर, अलवर, उदयपुर के नाम भी सम्मिलित करते थे। वे गौड़ग्राम, करणालय, नगरकोट, लवकोट, मंडी, बिलासपुर, गढ़वाल आदि नाम नहीं बोलते थे।

महाराज अग्रसेन ने तत्कालीन अनेक अनुपयुक्त मान्यताओं-परंपराओं को बदला, नई सामाजिक मर्यादाएं-मान्यताएं स्थापित की। नयी समाजवादी राज्य व्यवस्था का प्रतिपादन कर संघर्षपूर्ण जीवन में विजयश्री का वरण करते हुए अपार प्रतिष्ठा प्राप्त की। उनका यश संपूर्ण भारत में फैल गया। उनका राज्य एक आदर्श शासन-व्यवस्था वाला राज्य बन गया था। यहां के निवासी कर्मवीर, धर्मवीर और युद्धवीर थे। वे अत्यन्त परिश्रमी, उदार, व्यवहार-कुशल और परोपकारी थे। सर्वत्र शांति, सुख, वैभव और धर्म का राज्य था।

□□□

पांच

उस युग में आर्यों, यक्षों, किन्नरों, वानरों, गंधर्वों आदि के अतिरिक्त 'नाग' नामक शक्तिशाली मानव-जाति भी थी। वास्तव में यह एक महान आर्येतर जाति थी, जिसका अपना संगठन, सभ्यता, संस्कृति और मान्यताएं थीं। नाग लोग बड़े वीर थे। वे अधिकतर वनप्रदेशों में और समुद्र और नदियों आदि के किनारे रहते थे। ये लोग काले नागों की पूजा करते थे। अपने मुकुटों में नागचिह्न अंकित करते थे। आजकल लोग भ्रमवश नागवंशी मनुष्यों को नाम-साम्य के कारण सर्प समझ लेते हैं। ये लोग सर्प नहीं, बुद्धिमान और वैभवशाली मानव थे। भारत में अनेक स्थानों पर इनके साम्राज्य थे, बड़े-बड़े राजप्रासाद और भवन थे। इनकी कन्याएं अत्यन्त रूपवती और गुणवती होती थीं। ये लोग स्वयं को 'नाग' कहते थे और इनके राजा नागराज कहलाते थे। बंगाल, असम, अरुणाचल प्रदेश, त्रिपुरा, मणिपुर, नागभूमि (नागालैंड) आदि स्थानों पर अनेक शक्तिशाली नाग-साम्राज्य थे। शेषनाग को भगवान का अवतार माना जाता है। भगवान विष्णु का शयन शेष-शैया पर माना जाता है। रक्षक शेषनाग उन पर छाया किए रहते हैं। नागलोक विष्णु भगवान का ससुराल है। वे घर-जंवाई बनकर ससुराल में ही निवास करते हैं। समुद्रराज, वासुकि, कुमुद, महीरथ, विंशानन, दशानन, तक्षक आदि अनेक महान नागराज (नागजाति के मानव-समूहों के राजा) कहलाते हैं। महाराज तक्षक देवराज इन्द्र के मित्र थे। लक्ष्मी के भाई, सती वृंदा के पति, जलंधर भी नागराज थे। जलंधर के पिता समुद्रराज महान नागराज थे।

श्रेष्ठ मानव और देवगण नागों से मित्रता रखते थे और उनसे वैवाहिक संबंध भी स्थापित करते थे। ऐसा करने में वे गर्व का अनुभव करते थे। देवासुर के समुद्र-मंथन में भी नाग लोग जुड़े हुए थे। आज भी नागपुर, नागद्वीप (निकोबार), कोलपुर

(बंगभूमि), नागदा, नागौर, नागपर्वत, नागसमुद्रम, नागनसुर, छतरपुर, तक्षशिला, नागपत्तन, नागरकोईला, नागरकोट, नागरुंड, नागशंकर, कोलपुर (महाराष्ट्र) मुणिपाल आदि स्थान नागजनों की कीर्ति के ही परिचायक हैं। काश्मीर में अनंतनाग, बेरीनाग, कुमाऊं में बेरीनाग आदि में भी 'नाग' शब्द है। इन स्थानों पर नागजाति के श्रेष्ठ मानवों की बहुलता थी। 'मनसामंगल' महाकाव्य में नाग-महिमा का वर्णन है। शोरसेन प्रदेश में भी मधुपुर से पद्मावती तक इन लोगों का राज्य था। भारशिव राजा भी नागवंशी थे। इनमें एक राजा गणपति नाग था। मधुपुर के निकट यमुना-तीर पर काल नाग रहता था जो क्षेत्रपाल (जागीरदार) जैसा था। इसे श्री कृष्ण ने परास्त किया था। यह कथा प्रकारान्तर से 'कालिया मर्दन' के नाम से जानी जाती हैं। इसमें कालिया को विषधर नाग (सर्प) बताया जाता है। बंगाल, आसाम, अरुणाचलप्रदेश, मेघालय, मिजोरम, त्रिपुरा, मणिपुर, उदयनपुरी, मधुपुर, पद्मावती, अहिच्छत्रा आदि में भी नागवंशियों के राज्य थे।

नागवंशियों की आर्यों से मित्रता और वैवाहिक संबंध थे। अनुश्रुति के अनुसार भी श्रीराम के पुत्र कुश और श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का विवाह नाग-कन्याओं से हुआ था। यदि इन नागों को सर्प मानें तो ये सांपिनों से विवाह थोड़े ही करते। ये कन्याएं मानवी थीं-अत्यन्त सुन्दर और गुणशील। इनसे सन्तति भी हुई। रावण-पुत्र मेघनाथ की पत्नी सुलोचना और वीर अर्जुन की पत्नी उलूपी भी नाग-कन्या थीं। नागराज वासुकि की बहिन जगतकारु का विवाह ऋषि जगतकारु के साथ हुआ, जिनके पुत्र आस्तीक मुनि ने नागराज तक्षक की राजा जनमेजय से रक्षा की थी। कुन्ती शूरसेन (अग्रसेन के भाई नहीं) की पुत्री थी जो नागवंशी थे। श्रीराम के भाई लक्ष्मण और श्रीकृष्ण के भाई बलराम को शेषनाग का अवतार माना जाता है। भगवान शिव भी नाग-मित्र हैं। जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ तथा सुपार्श्व के चिह्न भी नाग हैं। मैत्री और वैवाहिक संबंधों के कारण नागवंशी आर्यों की सदैव सहायता (रक्षा) करते थे, उन पर आक्रमण नहीं करते थे। इसका एक अपवाद अवश्य है-वह है अभिमन्यु के पुत्र राजा परीक्षित पर आक्रमण कर उन्हें मार डालना। वैसे नागवंशियों के पाण्डवों के साथ भी मधुर संबंध रहे। पिता के वध का बदला लेने के लिए परीक्षित-पुत्र राजा जनमेजय ने नागमेध-यज्ञ का आयोजन कर संपूर्ण नाग-

जाति के संहार का प्रयास किया, यद्यपि इसमें वे आंशिक ही सफल हो पाए। नागवंशी फिर शक्तिशाली हो गए। उन्होंने हस्तिनापुर पर विजय प्राप्त करते हुए अपने राज्य का विस्तार पंचनदप्रदेश (पंजाब), मालव प्रदेश (मध्यप्रदेश) के सुदूरपूर्व बंगाल तक कर लिया। ये लोग शैव-मतावलंबी थे, परन्तु वैष्णव-मतावलंबियों से मैत्रीपूर्ण संबंध रखते थे।

महाराज अग्रसेन के समय में दो नागराज नरेश बहुत प्रसिद्ध थे। इनमें एक तो कोलपुर के राजा महीरथ (महीधर) थे। कोलपुर कोलकाता (कलकत्ता) का ही नाम है जो बंगभूमि (बंगाल) की राजधानी था। दूसरे यशस्वी नागराज महीधर कुमुद थे, जो प्राग्ज्योति विशपुर के राजा थे। उनके राज्य में वर्तमान आसाम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मिजोरम, मणिपुर और त्रिपुरा का क्षेत्र था। इन क्षेत्रों में नागवंशी मानव बहुतायत से रहते थे। महीधर का अर्थ 'नाग' अथवा 'नागराज' है। इन नाग-राजाओं के बहुत शक्तिशाली और समृद्ध साम्राज्य थे। महाराष्ट्र, कर्नाटक, उड़ीसा आदि में भी कई स्थानों पर इनके केन्द्र थे।

महाराज कुमुद की अत्यन्त रूपवती और गुणवती कन्या थी, जिसका नाम माधवी था। वह विवाह योग्य हो गई थी। उसका गौरवर्ण, मृग-नयन, स्निग्ध-सुवासित अंग-प्रत्यंग, सब उसके अप्रतिम सौन्दर्य के साक्षी थे। उसकी अपूर्व सुन्दरता की चर्चा नागलोक में ही नहीं, संपूर्ण भारत में और देवलोक तक थी। देवराज इन्द्र भी उससे विवाह करने की कामना रखते थे।

माधवी परम सौन्दर्यवती होने के साथ-साथ गुणवती भी थी। संगीत के अन्तर्गत शास्त्रीय गायन, भरतनाट्यम नृत्य, सितार-वादन, चित्रकला आदि के साथ-साथ उसे अश्वारोहण, राज्यशास्त्र, नीतिशास्त्र, वेदवेदांग, धर्म-साहित्य, ललित कलाओं आदि का भी शिक्षण-प्रशिक्षण दिया गया था। वह अनेक विद्याओं और कलाओं में प्रवीण थी। □□□

छह

नागराज कुमुद के अंतःपुर में पृथक् से एक छोटा राजप्रासाद था, जो एक सुन्दर उद्यान में स्थित था। उद्यान में एक ओर सरोवर था, जिसके समीप ही माँ दुर्गेश्वरी का मन्दिर था। इसी महल में माधवी अपनी सहेलियों और परिचारिकाओं के साथ रहती थीं। यथा स्थान प्रहरी और अन्य अनुचर रहते थे। उद्यान में न केवल नाना प्रकार के फलदार वृक्ष, पुष्पतरु आदि थे, अपितु कोयल, मयूर, सारिका, रंग-बिरंगे कपोतों, हंसों आदि के भी मधुर स्वर गूंजते रहते थे। अनेक प्रकार के रंग-बिरंगे पुष्पों की सुगंध से वह उद्यान सदैव सुवासित रहता था। स्थान-स्थान पर फव्वारे शोभा बढ़ा रहे थे। समीपस्थ वन-प्रदेश में हिरण, नाग, कपि और अन्य जीव विचरण करते रहते थे। स्थान-स्थान पर मनोरम जल-स्रोत दीख पड़ते थे। कभी-कभी हिंसक पशुओं की गर्जना भी सुनाई पड़ जाती थी।

महल में माधवी की सखियां चित्ररेखा, सुरेखा, पल्लवी, सुरति आदि माधवी के साथ मनोविनोद कर रही थीं। पल्लवी बोली- 'माधवी, जब कली विकसित पुष्प का रूप धारण कर लेती है तो उसकी कमनीयता और भी बढ़ जाती है। उसका पराग दूर-दूर तक के भ्रमरों को अपने अस्तित्व की सूचना दे देता है। फलतः वे उसकी ओर आकर्षित होने लगते हैं। अब तुम भी कली से विकसित होकर पुष्प बन चुकी हो। तुम्हारे अनिंद्य सौंदर्य और गुणों की चर्चा सर्वत्र हो रही है। न केवल विभिन्न नागदेशों के राजा, पंचनद, मालवप्रदेश, जांगलदेश, वृन्दापुर, मधुपुर, यक्षलोक, गंधर्वलोक आदि के राजा और यहां तक कि देवपुर के राजा इन्द्र भी तुम्हारे साथ विवाह करने की कामना रखते हैं। परन्तु इन सबमें अग्रोहा का राजा अग्रसेन अत्यंत रूपवान, शीलवान, समृद्ध, शूरवीर और तेजस्वी है। उनका अग्रपुर से मालव प्रदेश तक एकछत्र राज्य है।'

पल्लवी भी कम नहीं थी। इठलाकर बोली- 'महाराज कुमुद को तुम्हारे विवाह की कितनी चिन्ता है, मुझे पता नहीं। पर मुझे तुम्हारे विवाह की बहुत चिन्ता है।'

सुरेखा बीच में कहने लगी- 'राजकुमारी, तुम्हारा कन्यादान तो पल्लवी ही करेगी। इसे तो तुम्हारे पिता से भी अधिक तुम्हारे विवाह की चिन्ता है।'

सुनकर सभी सहेलियां खिलखिलाकर हंस पड़ीं। पल्लवी ने कहा- 'एक बार पंचनद प्रदेश की ओर से राजभाट आए थे। वे मेरे पिता को इन राजाओं के विषय में बता रहे थे। तब मैंने यह सब सुना। अरे हां, चित्ररेखा, तू तो सब राजाओं के विषय में बहुत कुछ जानती है, तेरे पिता अमात्य जो हैं। और फिर तुझे किसी भी व्यक्ति का चित्र बनाने की सिद्धि भी प्राप्त है। तू अग्रोहा के राजा अग्रसेन का चित्र बनाकर राजकुमारी को दिखा न। और राजाओं के चित्र भी बनाकर दिखा दे। देखें, माधवी को कौन-सा राजा पसंद आता है।'

चित्ररेखा बोली- 'हां, मुझे चित्रकला की सिद्धि प्राप्त है। यह सिद्धि मुझे मां सरस्वती ने मेरी साधना पर प्रसन्न होकर दी थी। और सुन, मेरा विवाह होने के पश्चात् जब पुत्री होगी तो मैं उसका नाम 'चित्रलेखा' रखूंगी और उसे यह सिद्धि प्रदान करूंगी। सुरति, मेरी चित्रपटिका तो ला। मैं कुछ राजाओं के चित्र बनाकर दिखाती हूं।'

सुरति चित्रपटिका और अन्य सामग्री लेकर आ गई। चित्ररेखा ने एक-एक करके विभिन्न राजाओं के चित्र बनाकर दिखाना आरंभ कर दिया। देवराज इन्द्र का चित्र दिखाती हुई बोली- 'ये देवपुर के राजा देवराज इन्द्र हैं। ये अथाह धन, वैभवशाली साम्राज्य और रूप के स्वामी हैं। इनसे विवाह के लिए तो विश्व की कोई

भी सुन्दरी लालायित हो सकती है।'

राजकुमारी माधवी ने एक बार चित्र को देखा और मुंह फेर लिया। सहेलियां विस्मित होकर सब देख रही थीं। अंत में चित्ररेखा ने महाराज अग्रसेन का चित्र बनाकर दिखाया। माधवी उस चित्र को एकटक निहार रही थी। उसने उस चित्र को अपने हाथों में लेकर अपने हृदय से लगा लिया और कहने लगी- 'यही हैं मेरे आराध्यदेव। मैं इन्हीं का वरण करूंगी।'

पल्लवी बोली- 'अरे, यह तो चित्र देखकर ही मोहित हो गई। स्वयं प्रत्यक्ष में इस राजा को देखेगी तो मूर्च्छित ही हो जाएगी।'

सुनकर सब सखियां जोर से ठहाका लगाकर हंसीं। माधवी संकोच के साथ मुस्कान बिखेर रही थी। उसने कहा- 'सखियों, अब तुम कुछ भी कहो। मेरा निर्णय अटल है। वह बदल नहीं सकता।'

तभी सुनयना झूठमूठ डांट लगाती बोली- 'अरे, तुम सब इस चुहलबाजी में ही लगी रहोगी ? दुर्गेश्वरी माँ के दर्शनों के लिए मन्दिर जाना है। और हां माधवी, तुम माँ से इस मनोवांछित राजा के साथ अपने विवाह का वर मांग लेना। समझी ? मैं भी अपने महामात्य पिता के द्धारा महाराज कुमुद के पास संदेश भिजवाती हूं कि वे माधवी के विवाह के लिए स्वयंवर आयोजित करें। अब इस आयोजन की घड़ी आ गई है।'

सुनयना सखियों में सबसे बड़ी थी। उसका कथन आदेश के समान था। सब सखियां तैयार होकर पूजा-अर्चना के लिए माँ दुर्गेश्वरी के मन्दिर की ओर चल दीं। सबके मध्य में पूजा-थाल लिए माधवी चल रही थी। सरोवर होती हुई वे मन्दिर पहुंच गईं। माधवी के मन में महाराज अग्रसेन की छवि गहरी पैठ गई थी। उनकी स्मृति को वह मन से निकाल नहीं पा रही थी। माँ की पूजा करते हुए उसने मन ही मन यह वर मांगा कि महाराज अग्रसेन ही उसे पति-रूप में प्राप्त हों। उसे ऐसा अनुभव हुआ कि माँ दुर्गेश्वरी सहमतिसूचक मुस्कान बिखेर रही हैं।

मन्दिर के बाहर मयूरों और कोकिल की मधुर ध्वनि गुंजायमान हो उठी।

माधवी के महल में हुई बातों को सुनयना ने अपने महामात्य पिता को बता

दिया और महाराज कुमुद से इस संबंध में बात करने को कहा। महामात्य ने सभी बातों को ध्यान से सुना और सहमति में सिर हिलाया। वे तत्काल ही महाराज से मिलने के लिए चल दिए। उन्होंने सब बातें महाराज को बता दीं।

महाराज कुमुद गंभीर होकर बोले- 'महामात्यजी, पुत्री के विवाह की चिन्ता किस पिता को नहीं होती ? पिता चाहे राजा हो अथवा सामान्य नागरिक, पुत्री का विवाह समय पर सुयोग्य पात्र से हो जाए यह तो हर पिता चाहता है। माधवी के विषय में मैं भी चिन्तित हूं। इतनी सुयोग्य पुत्री के लिए उपयुक्त वर मिल पाना इतना सहज तो नहीं। देवपुर का राजा इन्द्र कपटी है, इसलिए उसमें मेरी रुचि नहीं है। मात्र अपार धन-संपत्ति और विशाल साम्राज्य ही तो कोई इसके लिए एकमात्र कसौटी नहीं। महाराज अग्रसेन के विषय में मैंने भी सुना है। वे वैष्णव मतावलंबी हैं और हम लोग शैवमत को मानने वाले हैं। नागों, आर्यों और देवों की पृथक-पृथक संस्कृतियां हैं, परन्तु उनमें परस्पर टकराव भी नहीं है। इनमें परस्पर विवाह पहले से होते आए हैं। यदि माधवी की पसंद राजा अग्रसेन है तो हम उनसे बात करेंगे। आर्य-नाग संस्कृति का मेल एक अच्छी बात होगी। अग्रसेन माधवी के लिए उपयुक्त वर हैं।'

महामात्य ने कहा- 'महाराज, देवराज इन्द्र राजकुमारी माधवी से विवाह करने को इच्छुक हैं। महाराज अग्रसेन राजकुमारी के लिए सर्वथा उपयुक्त वर हैं, परन्तु यदि आप उनका चयन अपने जामाता के रूप में करते हैं तो देवराज इन्द्र रुष्ट हो सकते हैं और उनके कोप से अनिष्ट भी हो सकता है।'

महाराज कुमुद बोले- 'कुछ भी हो महामात्य, नाग-शक्ति भी कोई कम तो नहीं। फिर आर्य और नाग-शक्ति मिलकर देव-शक्ति का सामना करने में समर्थ हैं। आप चिन्ता न करें, स्वयंवर की तैयारी करें। सभी उपयुक्त नरेशों को स्वयंवर का निमंत्रण दूतों के हाथों भिजवा दें- महाराज अग्रसेन के पास भी। वैसे मैं निजी रूप से भी एक बार उनसे मिलना चाहता हूं। शेष भगवान सब ठीक ही करेंगे।'

महामात्य ने कहा- 'आपका कथन सर्वथा उपयुक्त है महाराज ! स्वयंवर की तैयारी मैं अभी से आरंभ कर देता हूं। आप निश्चिन्त रहें और अपने सोचे अनुसार कार्य करें। महादेव सब अच्छा ही करेंगे।'

कहकर महामात्य चले गए। महाराज विचार-विमर्श करने के लिए रानी के

कक्ष की ओर चल दिए।

* * * * * *

देवपुर के राजा इन्द्र अपने दरबार में बैठे थे। ज्यों ही उनके राजदरबार में आकर नागराज कुमुद के दूत ने राजकुमारी माधवी के स्वयंवर का संदेश दिया, इन्द्र यह सुनकर कुपित हो गए। वे बोले- 'दूत, तुम अपने महाराज से कहना कि देवराज इन्द्र माधवी से विवाह करने के इच्छुक हैं। यदि वे इसके लिए सहमत नहीं होते तो नाग-शक्ति को हानि पहुंच सकती है, जो हम नहीं चाहते। नागवंशी हमारे मित्र हैं। उनसे वैवाहिक संबंध स्थापित करने से देव-शक्ति में वृद्धि ही होगी। हमने सुना है कि राजा कुमुद अपनी पुत्री का विवाह अग्रोहा-नरेश अग्रसेन के साथ करना चाहते हैं, यह ठीक नहीं होगा। आर्य और नागशक्ति मिलकर देव-शक्ति के लिए चुनौती बन सकती हैं, जो हम नहीं चाहते। राजा अग्रसेन को हमारे कोप का सामना करना पड़ेगा। हम स्वयं उनसे युद्ध करेंगे। उनके राज्य की ओर जाने वाली नदियों का मुंह हम मोड़ देंगे, जिससे उनके राज्य में अकाल पड़ जाएगा। हिमाचल की ओर से आने वाले मेघों को भी हम मंत्र-शक्ति से रोक लेंगे। वे हिमाचल के क्षेत्र में ही बरस जाएंगे, वापस अन्तर्वेद की ओर नहीं जा पाएंगे। इससे अग्रोहा राज्य में वर्षा नहीं होगी।'

दूत ने उत्तर दिया- 'महाराज, आपका संदेश नागराज तक पहुंचा दूंगा। इससे अधिक मेरे हाथ में कुछ नहीं है।'

कहकर दूत ने विदा ली।

□□□

सात

महाराज अग्रसेन एक दिन राज दरबार में बैठे थे। महामात्य, राजपुरोहित, सेनापति, विभिन्न विभागों के अमात्य आदि दरबार में उपस्थित थे। महाराज बोले- 'बुद्धि, शक्ति, धन और सेवा ये चारों ही वृत्तियां समाज के लिए आवश्यक हैं, तभी समाज अपेक्षित प्रगति कर सकता है। यदि केवल बुद्धि और शक्ति को ही महत्व दिया जाएगा तो समाज अपेक्षित गति से आगे नहीं बढ़ सकता। धन समाज के लिए ऊर्जा के समान है। ऊर्जाहीन समाज न तो बुद्धिमान हो सकता है और न शक्तिवान ही। समाज उपयुक्त समन्वय, सामंजस्य से ही सही अर्थों में ऊर्जावान हो सकता है। ऊर्जा से बुद्धि बढ़ती है, शक्ति बढ़ती है। बुद्धि सुख, सुविधा, शान्ति के लिए नये-नये उपाय खोजती है। शक्ति समाज की रक्षा करती है। जब तक सेवा-भाव नहीं होगा, ये तीनों वृत्तियां सार्थक नहीं। किसी भी वृत्ति की उपेक्षा करना उचित नहीं है। अभी तक बुद्धि और शक्ति को ही श्रेष्ठ माना गया है। साधन-संपन्नता, श्रम और सेवा-भाव भी उतने ही श्रेष्ठ हैं। हमारे राज्य में सभी वृत्तियों का उचित समन्वय रहेगा। सबका समुचित सम्मान होगा।

हम चाहते हैं कि सभी वर्ग विद्याध्ययन करें। सभी अस्त्र-शस्त्र संचालन में दक्ष हों, जिससे आक्रमणकारियों, जलदस्युओं आदि का सभी मिलकर मुकाबला करें और शत्रु परास्त हो। सभी में सेवाभाव हो। सभी सुखी और समृद्ध हों। राज्य में कोई भी निर्धन और भवनहीन न रहे। यदि अपवादरूप में कोई अभी भी निर्धन है तो अग्रोहा के एक लाख परिवार एक-एक मुद्रा उस परिवार को दें, जिससे वह भी लखपति बन जाए। यदि किसी के पास स्वयं का भवन नहीं है तो प्रत्येक परिवार उसे एक-एक ईंट देगा, जिससे एकत्रित एक लाख ईंटों से वह अपना भवन बना सकेगा। अग्रोहा में आकर बसने वाले हर नये परिवार को भी यह ईंट और मुद्रा भेंट

की जाएगी, जिससे वह अपने स्वयं के भवन में ठीक प्रकार से रह सकेगा तथा प्राप्त मुद्राओं से व्यापार आदि करके समुचित जीवन-निर्वाह कर सकेगा। एक मुद्रा और एक ईंट देना किसी भी परिवार के लिए कठिन नहीं है। जनता पर अधिक करों का बोझ लादना किसी भी न्यायी राजा के लिए उचित नहीं है। व्यवसायियों और श्रमिकों, कृषकों पर भी अधिक कर नहीं लगाए जा सकते। जो चाकरी अथवा सेवाकार्य में हैं, जिन्हें जीवन-यापन के लिए राजकोष से धन दिया जाता है, उन पर भी अधिक कर लगाकर बहुत-सा धन वापस ले लेना भी ठीक नहीं होगा। जिनके पास अधिक धन नहीं है, वे अधिक कर कैसे देंगे ? आय के अनुसार लोग स्वयं 'कर' देंगे।

'प्रतिष्ठा, सुख-समृद्धि, ज्ञान और सुरक्षा श्रेष्ठ समाज के लिए आवश्यक हैं। हमारी इस सामाजिक व्यवस्था को 'समाजवादी व्यवस्था' के नाम से जाना जाएगा। जन्म, जाति, वर्ण, कुल, धर्म, धन अथवा व्यवसाय के आधार पर कोई भी

छोटा-बड़ा नहीं समझा जाएगा। न किसी को प्राथमिकता दी जाएगी और न ही किसी की उपेक्षा होगी। श्रम और कृषि कार्य करने वालों को भी पूरा सम्मान दिया जाएगा। गोपालन, गो-पूजा और गोवंश की उन्नति को श्रेष्ठ कार्य माना जाएगा। जीव-हत्या और बलि-प्रथा कानूनन अपराध होगा। बुद्धिजीवी सबको समान समझेंगे। शक्तिजीवी किसी को सताएंगे नहीं, सबकी रक्षा करेंगे। कोई भी अधिकारी-कर्मचारी जनता से अपने लिए धन अथवा उत्कोच नहीं लेगा। व्यापार-व्यवसाय नीतिपूर्वक किया जाएगा। चाकर, श्रमिक आदि ईमानदारी से काम करेंगे। सभी के मन में जनता के लिए सेवाभाव होगा। सार्वजनिक और निजी समस्याओं का पक्षपातरहित अविलंब समाधान किया जाएगा। हर परिवार कुछ धन दान-पुण्य, सेवा-कार्य में व्यय करेगा और कुछ धन अपने सुखमय भविष्य के लिए संचित करेगा। हर परिवार अपने बच्चों को समुचित विद्या ग्रहण कराएगा और उन्हें अच्छे संस्कारों से संपन्न करेगा। विद्वानों, कलाकारों, समाजसेवियों और बड़ों का सभी सम्मान करेंगे। धनधान्य-वृद्धि और सुख-समृद्धि के लिए महालक्ष्मी का पूजन करें।'

दरबार में उपस्थित सभी जन मंत्रमुग्ध होकर महाराज की व्यवस्था को सुन रहे थे। वे यह सब सुनकर गद्‌गद हो गए और 'महाराज की जय' बोलने लगे।

राजपुरोहित ने कहा- 'राजन्, आपका कल्याण हो। आपने जो अभी उद्‌गार प्रकट किए हैं, वे अपूर्व हैं। अभी तक अन्य किसी राजा ने इस प्रकार की समाजवादी-व्यवस्था अपने राज्य में लागू नहीं की है। आप धन्य हैं जो प्रजा को संतान के समान प्रिय समझते हैं। आप प्रजावत्सल हैं। मैं प्रजा की ओर से आपको 'विष्णु अग्रसेन' उपाधि से सम्मानित करता हूं।'

राजपुरोहित ने महाराज के निकट जाकर उन्हें आशीर्वाद दिया। महाराज ने सिंहासन से उतरकर राजपुरोहित के चरण स्पर्श किए।

महाराज बोले- 'आपके द्वारा दिए गए आशीर्वाद और प्रजा द्वारा दिए गए सम्मान के लिए मैं हृदय से आभारी हूं। आपके चरण स्पर्श करके मैंने समूची प्रजा के चरण स्पर्श कर लिए हैं। प्रजा की सेवा राजा का कोई उपकार नहीं है, यह तो उसका कर्त्तव्य और प्रजा का अधिकार है। यह राज्य तो प्रजा की धरोहर है, इसकी रक्षा

करना राजा का दायित्व है। मैं अपने दायित्वों का पालन करूंगा। प्रजा के इस राज्य का संचालन मैं प्रजा के लिए ही करूंगा।'

तभी 'महाराज की जय हो' कहते हुए राजप्रहरी ने प्रवेश किया और कहा- 'महाराज, नागराज कुमुद के यहां से आया दूत दरबार में उपस्थित होना चाहता है। आज्ञा हो तो उसे उपस्थित होने दिया जाए।'

महाराज ने आज्ञा दी- 'दूत को दरबार में आने दिया जाए।'

राजप्रहरी 'जो आज्ञा महाराज' कहकर चला गया और नागराज कुमुद के दूत को लेकर दरबार में पुनः उपस्थित हो गया।

दूत बोला- 'महाराज की जय हो। श्रीमन्, नागराज महाराज कुमुद की कन्या माधवी अब विवाह योग्य हो गई है। वह अत्यन्त रूपवती, शीलवती और गुणवती है। अनेक राजाओं के अतिरिक्त, देवपुर के राजा इन्द्र भी राजकुमारी के साथ विवाह करने को इच्छुक हैं। परन्तु राजकुमारी ने आपकी ख्याति सुनकर और आपके चित्र को देखकर मन ही मन आपको पति-रूप में वरण कर लिया है। नागराज भी यह विवाह-संबंध स्थापित करके आपकी ओर मैत्री का हाथ बढ़ाना चाहते हैं। वे आपके प्रशंसक हैं। आपसे संबंध और मैत्री स्थापित कर वे अपने को धन्य मानेंगे। वे देवराज इन्द्र से अपनी सुकन्या का विवाह नहीं करना चाहते। इसके लिए वे इन्द्र-कोप सहने तक को तैयार हैं।'

महाराज अग्रसेन बोले- 'हम तो स्वयं ही नागराजों से मित्रता स्थापित करना चाहते हैं। नागवंशी देश के वीर और श्रेष्ठ जन हैं। उनसे भला कौन मित्रता नहीं चाहेगा ? उनसे संबंध और मैत्री स्थापित करने में हमें अपार प्रसन्नता होगी। हे दूत, अब तुम महाराज का पूरा संदेश यहां सभा में बता दो।'

दूत ने कहा- 'महाराज, आगामी पूर्णिमा के दिन प्राग्ज्योतिपुर में राजकुमारी माधवी के लिए स्वयंवर-समारोह आयोजित किया जा रहा है। इसमें अनेक राजा-महाराजा, राजकुमार भाग लेंगे। इसी दिन राजकुमारी मनोवांछित वर को वरण करेंगी। महाराज कुमुद ने आपकी उपस्थिति के लिए विशेष रूप से निवेदन किया है।'

दूत ने कहा- 'महाराज, स्वयंवर से पूर्व नागराज कुमुद आपसे स्वयं भेंट

करेंगे और स्वयंवर में पधारने के लिए आपसे विशेष निवेदन करेंगे। औपचारिक निवेदन के लिए मुझे यहां भेजा गया है।'

दूत को यथारीति विदा कर दिया गया। उसके पश्चात् महामात्य कहने लगे- 'महाराज, यह समाचार शुभ है। आपको स्वयंवर में अवश्य ही जाना चाहिए। राजकुमारी माधवी के प्रकरण को लेकर देवराज इन्द्र कुछ भी कर सकते हैं, हमारे राज्य पर आक्रमण भी। हमें सावधान रहना चाहिए। आप एक बार देवराज इन्द्र को पहले भी परास्त कर चुके हैं, अतः वे आपसे वैसे ही चिढ़े बैठे हैं।'

महाराज बोले- 'महामात्य, आप ठीक कहते हैं। नागवंशियों से मैत्री और संबंध स्थापित करने से हमारी शक्ति बढ़ेगी। आज जो राजनीतिक वातावरण बन रहा है, उसे देखते हुए तो यह और भी आवश्यक है। उधर नागराज तक्षक इन्द्र के मित्र बने हुए हैं। हमें भी नागराजों से मित्रता करनी होगी। हम तो पहले से ही इस विषय में सोच रहे थे। हम स्वयंवर में अवश्य जाएंगे।'

महाराज के इस कथन के साथ ही दरबार विसर्जित हो गया।

* * * * * *

नागराज कुमुद एक दिन महाराज अग्रसेन से मिलने अग्रोहा पहुंच गए। महाराज अग्रसेन ने उन्हें अपने निजी कक्ष में बुलाकर आदरपूर्वक बैठाया। नागराज बोले- 'वत्स अग्रसेन, आपको हमारे दूत के द्वारा यह संदेश मिल ही गया होगा कि आगामी पूर्णमासी के दिन हम अपनी विवाह योग्य सुकन्या माधवी के लिए स्वयंवर-समारोह आयोजित करने जा रहे हैं। इसमें आप सादर आमंत्रित हैं।'

इधर देवशक्ति अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए आर्यशक्ति को क्षीण करने में लग रही है तो उधर दाक्षिणात्य सिर उठा रहे हैं। आर्यशक्ति और नागशक्ति मिलकर अहितकारी तत्वों का सामना कर सकेंगी। नागशक्ति का लोहा तो देवशक्ति भी मानती है। देवपुर के राजा इन्द्र माधवी से विवाह करने और नागवंशियों से मैत्री बढ़ाने के इच्छुक हैं। परन्तु राजकुमारी माधवी ने मन ही मन आपको वरण कर लिया है, इन्द्र से विवाह करने के पक्ष में वह नहीं है। मैंने भी आपकी कीर्ति सुनी है। आपको जामाता बनाकर मैं अपने कुल को धन्य मानूंगा। नागवंश आपको पूरा

आदर देगा और समय पड़ने पर आपकी सब तरह से सहायता करेगा। परन्तु एक बात मुझे संकोच में डाल रही है।'

महाराज अग्रसेन बोले- 'समादरणीय नागराजजी, आपके विचारों से मैं भी सहमत हूं। आपके श्रेष्ठ वंश से मैत्री और वैवाहिक संबंध स्थापित करके हमारा वंश भी गर्व की अनुभूति करेगा। सुन्दर और गुणवती राजकुमारी माधवी इस वंश की वधू बनेगी, इससे उत्तम और क्या बात होगी ? रही आपके संकोच की बात, आप स्पष्ट रूप से बताइए। इसका समाधान किया जाएगा।'

नागराज सहज होते हुए बोले- 'बात तो कोई बड़ी नहीं है। हम लोग शैव हैं और आप वैष्णव। दोनों वंशों की सभ्यता-संस्कृति, रीति-रिवाजों में अंतर है, एक सीमा तक मतभेद भी हैं। वैसे माधवी चतुर कन्या है। वह स्वयं को आपकी संस्कृति के अनुकूल ढालने का पूरा प्रयत्न करेगी। फिर भी....।'

महाराज अग्रसेन ने कहा- 'महाराज, आप इन बातों की चिन्ता न करें। दोनों कुलों में पूर्ण सौहार्द रहेगा। दोनों कुल परस्पर सहायता और सहयोग के लिए तत्पर रहेंगे। आपके कुल का नाम हमारे वंश में सदा चलता रहेगा। विवाह, उत्सव आदि अवसरों पर नाग-प्रतीकों की पूजा होगी।'

नागराज संतुष्ट हो गए। बोले- 'मैं आपके उत्तर से प्रसन्न हूं। नागवंशी भी आपके कुल के सदैव सहायक और रक्षक रहेंगे।

नागराज चले गए।

□□□

आठ

आज प्राग्ज्योतिपुर दुल्हन की भांति सजा है। भवनों पर नाना प्रकार की उत्कृष्ट सजावट है। रात्रि को दीपावलियों से नगर को आलोकित किया जाएगा। नगर-निवासियों ने रंग-बिरंगे परिधान धारण किये हैं। नारियां सुन्दर परिधान पहनकर और स्वर्ण, रजत और रत्नों के आभूषण से श्रृंगारित हैं। संध्या के समय वे दीपदान करेंगी। भवनों के आंगनों में तथा चतुष्थकों पर रंगबिरंगी रंगोलियां बनाई गई हैं। राजनर्तक और लोकनर्तक सोने-चांदी के काम वाले श्वेत-श्याम वस्त्र धारण किए नाग-नृत्य कर रहे हैं तथा वाद्य-वादन भी हो रहा है। राज-परिवारों के सदस्य नागचिह्नयुक्त मुकुट धारण किए हुए हैं। आज राजकुमारी माधवी का स्वयंवर है। सर्वत्र प्रसन्नता और उत्साह का वातावरण है।

नागराज कुमुद के राजप्रासाद के समीप विशाल उद्यान में यह समारोह आयोजित किया गया है। विभिन्न राज्यों से आने वाले आशार्थी राजाओं, अवलोकन निमित्त आने वाले राज-परिवारों, प्रजा तथा महिलाओं के लिए बैठने का विशेष प्रबंध किया गया है। महाराज अपने अमात्यों तथा राजपरिवार के सदस्यों के साथ आगंतुकों का स्वयं स्वागत कर रहे हैं। नगर की महिलाएं घरों की छतों पर चढ़कर राजमार्ग पर होकर स्वयंवर हेतु आने वाले राजाओं और उनके दलों को उत्सुकता और प्रसन्नतापूर्वक देख रही थीं। 'पंचनद-नरेश की जय', 'देवपुर के राजा इन्द्र की जय' आदि जयघोषों से राजाओं का स्वयं ही परिचय मिल जाता था। महाराज अग्रसेन के दर्शनों के लिए सब में विशेष जिज्ञासा थी।

आज राजकुमारी माधवी अपनी सहेलियों के साथ माँ दुर्गेश्वरी के मंदिर में विशेष पूजा-अर्चना करके आई है। जब राजमार्ग पर 'अग्रोहा-नरेश महाराज अग्रसेन की जय' जयघोष सुनाई दिया तो माधवी भी महाराज अग्रसेन की एक

झलक पाने को लालायित हो उठी और सहेलियों के साथ राजप्रासाद के गोखे पर जाकर महाराज अग्रसेन के दर्शन किए और आह्लादित होकर मन ही मन उन्हें प्रणाम किया। अन्य राजाओं के आगमन में राजकुमारी ने रुचि नहीं दिखाई।

निर्धारित समय पर राजागण स्वयंवर-स्थल पर आकर यथास्थान बैठ गए। महाराज अग्रसेन के पास पंचनद, पंचाल आदि राज्यों के नरेश बैठे थे। फिर देवपुर के राजा देवराज इन्द्र बैठे थे। महाराज अग्रसेन शांत और प्रसन्न मुद्रा में थे। थोड़ी दूर पर बैठे इंद्र उन्हें आग्नेय दृष्टि से बीच-बीच में देख लेते थे। अन्य राजागण सजधजकर बैठे थे और बार-बार उस द्वार की ओर देख लेते थे, जिधर से राजकुमार माधवी का आगमन निश्चित था।

कुछ ही देर में विविध वाद्यवृन्द बज उठे। यह राजकुमारी के आगमन का संकेत था। सभी जन संभलकर बैठ गए। सौन्दर्यवती राजकुमारी माधवी अत्यंत सुन्दर परिधान तथा आभूषणों से सुसज्जित होकर अपनी सहेलियों के साथ अत्यंत संकोच के साथ विशेष द्वार पर दिखाई दी। हाथों में वरमाला लिए सिंहनी जैसी मंथर गति से चलती हुई माधवी ने धीरे से अपने मृगनयनों से सामने बैठे राजाओं को देखा और आगे बढ़ी। एक परिचायक अधिकारी सामने वाले राजा का परिचय देता जाता था। माधवी उस राजा को अत्यंत संकोच के साथ नीची दृष्टि को किंचित् उठाकर देख लेती और धीरे से आगे बढ़ जाती।

फिर महाराज अग्रसेन का आसन आया। परिचायक अधिकारी ने कहा- 'हे राजकुमारी माधवी, ये अग्रोहा के तेजस्वी महाराज अग्रसेन हैं। ये प्रतापनगर-नरेश महाराज वल्लभसेन के पुत्र हैं।' यह कहकर राज-परिचायक आगे बढ़ गया और राजकुमारी के भी आगे बढ़ जाने की प्रतीक्षा करने लगा, जिससे अगले राजा का परिचय दिया जा सके।

राजकुमारी माधवी ने दृष्टि उठाकर महाराज अग्रसेन को एक बार देखा और फिर दृष्टि नीची कर ली। महाराज शांत भाव से प्रसन्नतापूर्वक बैठे थे। सहेलियां हर्षातिरेक से कभी महाराज अग्रसेन को, कभी राजकुमारी माधवी को देख रही थीं। सुनयना ने माधवी से कहा- 'राजकुमारी, यदि तुम महाराज अग्रसेन की जीवनसंगिनी बनना चाहती हो तो यह वरमाला उन्हें पहनाकर वरण करो, अन्यथा

आगे बढ़ो।'

माधवी ने मुस्कराकर सुनयना को देखा। उसने धीरे-धीरे अपने हाथ ऊपर उठाए और वरमाला महाराज अग्रसेन के गले में डाल दी। सबने करतल-ध्वनि की।

देवराज इन्द्र कुपित होकर उठे और स्वयंवर-स्थल से चले गए। महाराज अग्रसेन अपने आसन से उठकर खड़े हो गए। माधवी की एक सहेली थाल में वधूमाला लिए खड़ी थी। उसने थाल को महाराज के आगे कर दिया। महाराज अग्रसेन ने खड़े होकर थाल में से माला उठा ली और उसे माधवी के गले में पहना दिया। पुनः करतल-ध्वनि हुई। महाराज कुमुद अपने संबंधियों और अधिकारियों के साथ महाराज अग्रसेन के निकट आए। उन्होंने अग्रसेन-माधवी को आशीर्वाद दिया। और बोले- 'अतिथि राजागण, राजकुमारी माधवी ने अग्रोहा के नरेश महाराज अग्रसेन का वरण पति-रूप में कर लिया है। अब शुभ-मुहूर्त्त में इनका विवाह संपन्न किया जाएगा। आप सब यहां पधारे, हम कृतज्ञ हैं। आप सभी विवाह-समारोह के लिए सपरिवार सादर आमंत्रित हैं, देवराज इन्द्र कुपित होकर पहले ही चले गए थे। शेष राजा भी धीरे-धीरे जाने लगे।

स्वयंवर-समारोह विधिपूर्वक संपन्न हो गया। महाराज कुमुद ने राजकुमारी माधवी का विवाह आनंद-पूर्वक महाराज अग्रसेन के साथ कर दिया। शगुन की वस्तुएं और उपहार आदि दिए। उन्होंने महाराज अग्रसेन की रक्षा के लिए विशेष रक्षक दल और शस्त्र-युक्त नागसेना-टुकड़ी भी भेजी।

महाराज अपने परिवार के साथ राजकुमारी माधवी को लेकर अग्रोहा आ गए। अग्रोहा नगर और संपूर्ण जनपद दुल्हन की भांति सजे थे। स्थान-स्थान पर स्वागत-द्वार बनाए गए थे। दीप-मालिकाओं के आलोक में नगर देवपुर के समान आलोकित था। सभी नर-नारी अत्यंत प्रसन्न थे। नारियां अट्टालिकाओं से महाराज अग्रसेन और महारानी माधवी को देखकर गद्‌गद हो रही थीं। एक मास तक अग्रोहा राज्य राजोत्सव में व्यस्त रहा। महाराज ने महारानी और अपने परिवार के साथ महालक्ष्मी के मन्दिर में जाकर विशेष पूजा-अर्चना की और आशीर्वाद ग्रहण किया।

* * * * * *

उधर कुपित इन्द्र महाराज अग्रसेन से बदला लेने और अग्रोहावासियों को कष्ट पहुंचाने के लिए ताना-बाना बुन रहे थे। उन्होंने अग्रोहा राज्य की ओर जाने वाली नदियों का मुंह मोड़ दिया। तांत्रिकों के सहयोग से और मंत्र-बल से बादलों को अपने प्रदेश में ही रोककर उन्हें बरसा दिया, जिससे वे अग्रोहा राज्य की ओर जाकर वर्षा न कर सकें। अग्रोहा में अकाल पड़ गया। फिर इन्द्र ने अग्रसेन पर आक्रमण कर दिया। महाराज अग्रसेन एक बार पहले भी देवराज इन्द्र को परास्त कर चुके थे। इस बार भी उन्होंने वीरतापूर्वक इन्द्र का सामना किया। कई दिनों तक भीषण युद्ध चलता रहा। महाराज अग्रसेन का परास्त होना कठिन था। यह देखकर देवगण के परामर्श पर देवर्षि ने आकर दोनों को समझा-बुझाकर युद्ध बन्द कराया और महाराज अग्रसेन तथा देवराज इन्द्र में मित्रता करा दी। देवपुर-राजा ने भी मित्रता करना ही श्रेयष्कर समझा और मैत्री-चिह्न के रूप में अप्सरा मधुशालिनी को महाराज अग्रसेन के पास उपहार स्वरूप भेज दिया।

बलशाली नागवंश से वैवाहिक संबंध और देवराज इन्द्र से मैत्री स्थापित हो जाने पर अग्रोहावासी प्रसन्न थे। वे नागवंशियों को 'मातुल पक्ष' मानने लगे। नाग-पंचमी के दिन नागदेवों की विशेष उपासना की जाने लगी। नगर चौक में नागराज और देव-तुल्य महाराज विरूपाक्ष का मंदिर बनाया गया, जिसमें खड़ी अवस्था में उनकी विशाल मूर्ति स्थापित की गई। मूर्ति के मस्तक पर फन फैलाए विशाल नाग खड़ा है। पास में उनकी पत्नी की मूर्ति है।

उधर महाराज कुमुद ने त्रिपुरा प्रदेश में राजकुमार माधवी के शुभ-विवाह के उपलक्ष्य में और महाराज अग्रसेन के सम्मान में 'अग्रतला' नाम से नया नगर बसाया। बहुत-से अग्रोहा-निवासी वहां जाकर बस गए और व्यापार करते हुए आनंद-पूर्वक वहां रहने लगे। नागवंशियों से संबंध स्थापित हो जाने से अग्रसेन और भी बलशाली हो गए। नागवंश का सम्मान करने के उद्देश्य से उन्होंने अनेक नागवंशी-रीतिरिवाजों को प्रतीक के रूप में अपना लिया। नाग राजाओं की पूजा के अतिरिक्त कन्या विवाह के समय सिरगूंथी करना, चांबरी, चुनरी ओढ़ाना, भवन की बाहरी दीवारों पर नाग-चित्र अंकित करना, थापे लगाना आदि अनेक प्रतीकात्मक रिवाज अग्रजनों के साथ जुड़ गए। विवाह के समय साफा बांधना, पगड़ी पहनना आदि रिवाज भी प्रकारान्तर से इसी से जुड़े हैं। राज-परिवार के सदस्य भी इन रिवाजों को मानते थे। शेषनाग की शैया पर लेटे हुए भगवान विष्णु शेषनाग के सहस्त्रफनों से रक्षित माने जाते हैं। शेषनाग उन पर फनों की छाया किए रहते हैं। वैसे ही महाराज अग्रसेन के ऊपर राजछत्र रहता था। अग्रजनों के विवाह में घोड़ी पर सवार वर के ऊपर भी छत्र रहता है, जिसे एक परिचारक पकड़े रहता है। चंवरधारी भी चंवर झलता है।

आज तक भी ये रिवाज अग्रजनों में प्रचलित हैं। गोगाजी और बाबा रामदेव को नागराज का अवतार मानकर आज भी बहुत से लोग उनकी पूजा-अर्चना करते हैं। बहुत-से लोग नागवंशी मनुष्यों को भ्रमवश नाग या सर्प समझ लेते हैं। नागवंशी मनुष्य थे। वे नागों (सर्पों) की पूजा करते थे। उनके चिह्न मुकुटों पर धारण करते थे। उन्हें नाग-मन्दिर (तहखाना) में रखकर दुग्धपान कराते थे। नागमणि धारण

करते थे। 'नाग' शब्द से मनुष्यों और सर्पों को भ्रमवश एक मान लिया जाता है और अर्थ का अनर्थ हो जाता है। मातुल-पक्ष 'नागवंशी' होने के कारण नाम-साम्य के कारण अग्रजन नागों (सर्पों) को नहीं मारते। ऐसा भी माना जाता है कि अग्रवंशियों द्वारा पूजा पाने के कारण नाग-सर्प अग्र-जन को हानि नहीं पहुंचाते। नागवंशी मनुष्य और नागवंशी सर्प एक नहीं हैं, परस्पर मैत्री-भाव लिए हुए अवश्य हैं। अगरतला (अग्रतल) आजकल त्रिपुरा राज्य की राजधानी है।

देवराज इन्द्र द्वारा अग्रोहावासियों को कष्ट दिए जाने, अनावृष्टि आदि प्रकोपों से आर्द्र होकर महाराज अग्रसेन ने महारानी माधवी के साथ तपोवन में जाकर महालक्ष्मी की विशेष उपासना की। महालक्ष्मी तपस्या से प्रसन्न होकर प्रकट हुईं और आशीर्वाद देती हुई बोलीं- 'वत्स अग्रसेन, तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हें चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। मेरी कृपा सदैव तुम्हारे कुल पर रहेगी। मैं सदैव तुम्हारे कुल में निवास करूंगी। अग्रजन जब तक मेरी उपासना करते रहेंगे, उन्हें धन-धान्य आदि की कभी कमी नहीं रहेगी। तुम अन्य नागवंशी परिवारों से संबंध बनाकर और भी शक्ति तथा वैभव से परिपूर्ण बनोगे। कोलपुर के राजा नागराज महीरथ की कन्या सुन्दरावती तथा उसकी बहिनों से विवाह करो।' यह कहकर महालक्ष्मी अंतर्धान हो गईं।

महाराज महारानी सहित अग्रोहा लौट आए।

□□□

नौ

महाराज अग्रसेन और महारानी माधवी एक दिन अपने राजप्रासाद में वार्तालाप कर रहे थे। माधवी बोलीं- 'महाराज, विवाह से पूर्व ही मैंने आपको मन ही मन पति-रूप में वरण कर लिया था। मेरी सहेली चित्ररेखा ने आपका चित्र बनाकर मुझे दिखा दिया था। फिर जब आप स्वयंवर में भाग लेने हमारे महलों के आगे से जा रहे थे, तब मैंने आपके दर्शन भी कर लिए। आपकी छवि मेरे हृदय-स्थल पर अंकित हो गई थी। मैं भाग्यवती हूं जो आपने मुझे अपना लिया।'

महाराज ने कहा- 'माधवी, तुम्हारी-जैसी सुन्दर और गुणवती पत्नी पाकर कौन अपने भाग्य पर नहीं रीझेगा ? तुमने हमारे राजप्रासाद की शोभा बढ़ाई है। राजकुमारी सुन्दरावती और उनकी बहिनों से विवाह करने पर भी तुम महारानी ही नहीं, हमारी पटरानी भी रहोगी। तुम हमारे साथ राजसिंहासन पर बैठा करो। राजकार्य में भाग लिया करो। तुम्हारे निर्णयों और परामर्श का हम सम्मान करेंगे। तुम हमारे राज्य की ही महारानी नहीं, हमारे हृदय की भी रानी हो।' कहकर महाराज ने माधवी को गले लगा लिया। माधवी ने लजाकर आंखें नीची कर लीं।

एक दिन महारानी माधवी ने महाराज से कहा- 'महाराज, कल नाग-पंचमी है। कल हमारे पूर्वजों का श्राद्ध-दिवस है। इस दिन हमारे यहां पुरखों का श्राद्ध-तर्पण-अर्चन किया जाता है। चूंकि हमारे यहां नागसर्पों की भी पूजा होती है, पुरखों की स्मृति में हम उन्हें दुग्ध-पान कराते हैं, पूजते हैं। कल मैं पहले महालक्ष्मी के दर्शन करूंगी। फिर नागराज महाराज विरूपाक्ष के मंदिर जाकर पूजा-अर्चन करूंगी। आप इसकी व्यवस्था करा दें।'

महाराज बोले- 'माधवी, तुम चिन्ता न करो। सब प्रबंध हो जाएगा। तुम्हारे यहां के पूर्वज हम लोगों के लिए भी पूजनीय हैं। नगर निवासी और वधुएं भी नाग-

देवों और नागसर्पों की पूजा करेंगी। नागवंशियों से संबंध स्थापित करने से हमारी राजशक्ति बढ़ी है। साम्राज्य-संतुलन और उन्नति के लिए आर्य-नागशक्तियां का मेल आवश्यक है। इसी ध्येय को लेकर महालक्ष्मी की आज्ञा के अनुसार हम राजकुमारी सुन्दरावती के स्वयंवर में जाकर उनका वरण करेंगे। हमारे पास नागराज महीरथ का संदेश आ चुका है।

माधवी ने कहा- 'महाराज महीरथ हमारे संबंधी और पिताश्री के मित्र भी हैं। वे बहुत शक्तिशाली नागराज हैं। कोलपुर राज्य उनका विशाल साम्राज्य है जो संपूर्ण बंगभूमि और आसपास के क्षेत्र में फैला है। पिताश्री की उनसे बात हुई है। महाराज महीरथ आपके बड़े प्रशंसक हैं। आपसे मैत्री और वैवाहिक संबंध स्थापित करके उन्हें प्रसन्नता होगी। आप स्वयंवर में अवश्य जाइए। सुन्दरावती रिश्ते में मेरी बहिन ही नहीं, सहेली भी है। वह सुन्दर, शीलवती और गुणवती भी है। यहां के लिए वह सब प्रकार से योग्य है।'

कोलपुर के नागराज महीरथ महाराज ने समय पर राजकुमारी सुन्दरावती के लिए स्वयंवर-समारोह आयोजित किया। विभिन्न राज्यों के राजागण-राजकुमार स्वयंवर में भाग लेने के लिए पहुंचे। सुन्दरावती ने महाराज अग्रसेन को वरमाला पहनाकर उन्हें पतिरूप में वरण कर लिया। महाराज महीरथ ने धूमधाम से राजकुमारी सुन्दरावती और उसकी सोलह बहिनों का विवाह महाराज अग्रसेन के साथ कर दिया।

दो शक्तिशाली नागवंशों से मैत्री और वैवाहिक संबंध स्थापित करने से महाराज अग्रसेन की शक्ति बहुत बढ़ गई। देवराज इन्द्र ने भी उनसे मित्रता कर ली थी। आसपास के राजागण भी उनसे मैत्री-भाव रखते थे। विदेशी आक्रमणकारियों को उनके राज्य पर आक्रमण करने का साहस नहीं होता था। जल-दस्यु भी उनके आगे निस्तेज हो गए थे। जब कुरुक्षेत्र में महाभारत-युद्ध हुआ तो महाराज अग्रसेन भी वीर वैश्यों और नागवंशियों की सेना लेकर उसमें भाग लेने के लिए गए थे और पाण्डवों की ओर से युद्ध किया था। अर्जुन नागवंशियों का जमाता था और श्रीकृष्ण की वैश्य जाति से रिश्तेदारी थी। यशोदा के पिता, बरसाने के क्षेत्रपाल (जागीरदार) वृषभानु आदि वैश्यवंशी ही थे। वृषभानु की पुत्री राधा का विवाह यशोदा के भाई से

हुआ था। बलराम शेषनाग के अवतार थे।

अब महाराज अग्रसेन ने अपने साम्राज्य को सुदृढ़ बनाया। अब वैश्य व्यापार के साथ-साथ वीरता में भी अग्रणी बन गए थे। अठारह रानियों से उनके तीन-तीन पुत्र हुए, जिनमें विभु सबसे बड़े थे। ये महारानी माधवी के पुत्र थे। बड़े होकर यही युवराज बने। सभी पुत्र रूपवान, गुणी, उदार, अतिथिसेवी और धर्मपरायण थे। दाक्षिणात्य नागराज दशानन और विंशानन की पुत्रियों से महाराज अग्रसेन ने अपने पुत्रों के विवाह संपन्न किए। दशानन कोलपुर (कोल्हापुर, महाराष्ट्र) के शक्तिशाली नाग-राजा थे। इस विवाह की स्मृति को स्थाई रूप देने के लिए उन्होंने कोलपुर के निकट 'अग्रनगर' बसाया जो बाद में 'आगर' कहलाया और जहां के निवासी अब 'आगरकर' कहलाते हैं। अग्रोहा के बहुत-से निवासी 'अग्रनगर' में जाकर रहने लगे। श्रेष्ठ व्यापार द्वारा उसे समृद्ध नगर बना दिया। अब देश भर के सभी प्रमुख और शक्तिशाली राजाओं से उनके मैत्रीपूर्ण तथा वैवाहिक संबंध स्थापित हो चुके थे। कुरु-जांगल के साथ-साथ अग्रोहा से लगभग पचास कोस दूर खांडव-वन में भी नागवंशियों के छोटे-छोटे राज्य थे।

महाराज अग्रसेन की अठारह पुत्रियां भी हुईं, जिनके विवाह उन्होंने योग्य वर देखकर कर दिए। सभी पुत्रियां सुन्दर और गुणवती थीं। अब महाराज का विशाल परिवार बन गया।

□□□

दस

महाराज अग्रसेन के पुत्रों के विवाह हुए अनेक वर्ष व्यतीत हो गए। जब किसी भी पुत्रवधू को संतान नहीं हुई तो महाराज को चिन्ता होने लगी। यह कोई दैवी-प्रकोप है या श्राप अथवा अन्य बाधा है ? महाराज ने इसका पता लगाने के लिए अमात्यों और पुरोहितों से मंत्रणा की। पुत्रवधुओं के महलों में पता लगाने के लिए भी गुप्तचरियां भेजीं।

प्रधान गुप्तचरी जाकर युवराज विभु की पत्नी की सेवा करने लगी। गुप्तचरी ने उसे बातों में लगाकर पूछ लिया-'युवरानीजी, क्या महाराज दशानन और विंशानन की सभी पुत्रियां वंध्या (बांझ) हैं, जो अभी तक किसी को भी संतान नहीं हुई ?'

युवरानी इस नई परिचारिका की सेवा से प्रसन्न थी। बोली- 'परिचारिके, ऐसा नहीं है। हम सभी बहिनें दिन में तो राजकुमारों के साथ बतियाती, हंसती हैं, परंतु रात्रि में हम अपने पिता द्धारा विवाह में दिए गए विशेष परिधान, जो श्याम वर्ण के हैं तथा जिन पर चांदी की लहरें, तारे, नागफन आदि अंकित हैं, धारण कर लेती हैं। जब हम इन परिधानों में होती हैं तो पतियों से न मिलती हैं, न बात करती हैं। सुबह होने पर हम रंग-बिरंगे वस्त्र पहनकर फिर पतियों से मिलने लगती हैं। जब तक ये श्यामवस्त्र हमारे पास हैं, हम मां नहीं बन सकेंगी।'

गुप्तचरी सयानी थी। बोली- 'यह तो ठीक है, परन्तु दिन में तो वे वस्त्र दिखाई नहीं देते। कहां रखती हो उन्हें ?'

युवरानी हंसी। कहने लगी- 'यह तो मैं नहीं बताऊंगी। पर हां, दिन में हम उन्हें छिपाकर रखती हैं, क्योंकि यदि अन्य कोई उन वस्त्रों को छू लेगा तो उसका प्राणांत हो जाएगा। वर्ष में एक बार नागपंचमी के दिन हम उन्हें दिन में भी धारण

करती हैं।'

गुप्तचरी ने यह भेद महाराज को बता दिया। उधर पुरोहितों ने पता लगा लिया कि महाराज के वंश के लिए कोई दैवी-प्रकोप अथवा श्राप नहीं है। महाराज की चिन्ता दूर नहीं हुई। उन्हें अपने सन्यासी भगिनीपुत्र (भानजे) जसराज का ध्यान आया।

जसराज बहुत बुद्धिमान और त्यागी पुरुष था। वह बचपन में ही सन्यासी हो गया था। वह निकट के तपोवन में आश्रम जाकर तपस्या में लीन रहता था। महाराज का संदेश पाकर वह अविलंब मातुलश्री (मामा) से मिला। महाराज ने अपनी चिन्ता उसे बताई। जसराज बोला- 'मामाश्री, आप तो स्वयं अत्यन्त बुद्धिमान और धैर्यवान हैं। जीवन में कठिनाइयां और समस्याएं तो समय-समय पर आती ही रहती हैं, परन्तु मनुष्य को निराश होकर धैर्य नहीं खोना चाहिए। हर समस्या का कोई न कोई उपाय भी होता है, जिससे उसका समाधान हो जाता है। धैर्य खो देने से काम बिगड़ जाता है। धैर्यपूर्वक विचार और प्रयास करने से बिगड़ता काम भी बन जाता है।'

महाराज ने कहा- 'वत्स, समस्या का अभी तक कोई हल न निकलने से मुझे चिन्ता है। तुम तपस्वी और बुद्धिमान हो। तुम कोई उपाय सोचो, जिससे इस समस्या का अंत हो और हमारा वंश आगे बढ़े।'

जसराज ने फिर धीरज बंधाया- 'मामाश्री, आप चिन्ता न करें, मैंने सब रहस्य जान लिया है। समस्या हल करने का उपाय भी मैंने सोच लिया है। बस, आप नागपंचमी तक प्रतीक्षा करें। इस प्रकरण को तब तक आप गुप्त ही रखिए। हां, एक तो जितनी पुत्रवधुएं हैं, उनके पहनने के लिए उतने ही मंगल-परिधान (लालवस्त्र) आप चुपचाप तैयार रखें और जब मैं नागपंचमी के दिन यहां आऊं तो गुप्त रूप से मुझे दे दें। साथ ही एक काम आपको और करना है। जब पुत्रवधुएं अपने श्याम वस्त्र पहनकर सरोवर पर स्नान के लिए जाएंगी और अपने वस्त्र उतारकर सरोवर के समीप वाले कक्ष में रखेंगी, फिर स्नान हेतु सरोवर में उतरेंगी, उस समय मंगल-परिधानों के साथ मैं गुप्त रूप से उस कक्ष तक पहुंच जाऊं, यह व्यवस्था भी आपको करनी है और कक्ष के बाहर निकट ही एक प्रज्जवलित चिता का प्रबंध भी

आपको उस समय कराना है। बस, आगे की बात मैं आपको अभी नहीं बताऊंगा। आप भी किसी को कुछ न बताएं। जैसा मैंने कहा है, वैसा प्रबंध गुप्त रूप से करा दें। आपकी समस्या का हल हो जाएगा और आपका वंश आगे बढ़ता ही रहेगा।'

महाराज को जसराज पर बहुत विश्वास था। उसके कथन से वे आश्वस्त हो गए। उन्हें विश्वास हो गया कि नागपंचमी के दिन इस समस्या का हल निकल आएगा। कैसे निकलेगा, यह वे भी नहीं जानते थे। उन्होंने इस विषय में किसी को भी कुछ भी नहीं बताया। जसराज के बताए अनुसार वे तैयारी करने लगे। नागपंचमी की उन्हें आतुरता से प्रतीक्षा थी।

आखिर, नागपंचमी का दिन आ गया। युवरानियां अपने श्याम वस्त्रों को पहनकर एक साथ सरोवर की ओर स्नान के लिए गईं। सरोवर के पास वाले कक्ष में उन्होंने अपने वस्त्र रख दिए और सरोवर की ओर चल दीं। उस क्षेत्र में पुरुष का प्रवेश वर्जित था। स्थान-स्थान पर परिचारिकाएं पहरा दे रही थीं। योजना के अनुसार जसराज उस दिन ब्रह्म-मुहूर्त में ही महाराज के पास आ गया था। स्त्री का वेश धारण करके तथा मंगल-परिधानों को लेकर वह सरोवर के पास वाले कक्ष में दूसरे द्वार से घुसा। उसने तत्काल मंगल-परिधान वहां रखकर युवरानियों के श्याम वस्त्र उठा लिए और तेजी से बाहर आ गया। निकट ही एक चंदन-चिता धू-धू करके जल रही थी। जसराज उन श्याम वस्त्रों के साथ जलती चिता में कूद गया और वस्त्रों सहित भस्म हो गया।

उधर युवरानियां स्नान करके उस कक्ष में गईं तो उन्होंने अपने श्याम वस्त्रों के स्थान पर मंगल-परिधान रखे देखे। वे कुछ भी समझ न सकीं। विवश होकर उन्होंने वे मंगल-परिधान धारण कर लिए और अपने श्याम वस्त्रों की चोरी की शिकायत लेकर महाराज के पास पहुंचीं।

महाराज की विचित्र स्थिति थी। एक ओर तो वे युवरानियों को मंगल-परिधानों में देखकर मन ही मन प्रसन्न थे तो दूसरी ओर भानजे के चिता में जीवित जल जाने का अपार कष्ट था। उसके बलिदान से वे गद्‌गद थे। जसराज ने अपने प्राण देकर उनके वंश को डूबने से बचा लिया था। श्याम वस्त्र जल जाने से उनको

प्राप्त करना असंभव था। उन वस्त्रों को छूने वाले पुरुष का तो प्राणांत होना ही था। अब ये युवरानियां माँ बन सकेंगी और उनका वंश आगे बढ़ेगा।

प्रकटतः महाराज ने पुत्रवधुओं को धीरज बंधाया और कहा- 'जो हो गया सो हो गया। अब तुम्हें पितृकुल का मोह त्यागकर ससुराल-पक्ष का हित सोचना चाहिए। इस कुल के कल्याण और वंश-वृद्धि में ये दैवीय श्याम वस्त्र बाधक थे। इनका नष्ट हो जाना ही सबके हित में है। इनके लिए एक तपस्वी के जीवन का बलिदान हुआ है। इसलिए तुम श्याम वस्त्रों का मोह छोड़कर सदैव लाल रंग के तथा अन्य रंगों के वस्त्र धारण किया करो। अपने कुलधर्म और नारी-धर्म का उज्जवल भविष्य के लिए पालन करो। जिसने तुम्हारे वस्त्र चुराए, उसे भी दंड मिल गया। उसका तो प्राणान्त ही हो गया। अब बताओ, किसे क्या दंड दूं ? शांत मन से अब अपने महलों में जाओ और गृहस्थ-धर्म का पालन करो। और हां, इस घटना की स्मृति हमारे वंश में सदैव बनी रहेगी। रीति-रिवाजों में संजोकर आगे की पीढ़ियां इसे सुरक्षित रखेंगी। तुम्हारे उन श्याम चोलों का स्मरण कर उनका सम्मान किया जाएगा।'

पुत्र-वधुएं आश्वस्त होकर अपने महलों की ओर चली गईं और उन वस्त्रों को भूलकर अपने धर्म-पालन में लग गईं।

महाराज अग्र के वंश में अब भी यह घटना रीति-रिवाज के रूप में अस्तित्व में है। नव वधू के लाल वस्त्र उसके मामा की ओर से आते हैं। ये वस्त्र पहनकर वह चंवरी में बैठती है। विवाह के उपरान्त ये वस्त्र कन्या के ससुर को पृथक् से सौंपे जाते हैं। महाराज अग्रसेन की पुत्र-वधुओं के पीहर के वे श्याम वस्त्र उनके ससुर (महाराज अग्रसेन) ने चोरी कराकर मंगाए थे। इस घटना की पुनरावृत्ति न हो, इसलिए रिवाज बन गया है। ससुर आदि की पीठ पर कन्या-पक्ष की स्त्री मेंहदी आदि के छापे (थापे) लगाती हैं, जो नागवंशी-परंपरा है। इसका अर्थ यह है कि नागवंशी उनकी पीठ पर हैं, उनकी रक्षा करेंगे। विवाहादि अवसरों पर महिलाएं श्याम वस्त्र नहीं पहनतीं।

वर के लिए वस्त्र, जूते आदि भी उसके मामा की ओर से आते हैं। वर और वधू

दोनों के मामा अपने पक्ष को भात (वस्त्रादि) देते हैं। भानजी-भानजे अपने मामा का बहुत आदर करते हैं। मामा भी अपने भानजे-भानजी के लिए बहुत स्नेह रखते हैं।

समय बीतता गया। सभी युवरानियां माँ बन गईं। महाराज का वंश-वृक्ष निरंतर बढ़ता ही रहा।

* * * * * *

महाराज अग्रसेन की धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा थी। धर्म को वे नैतिक अभ्युदय का स्रोत मानते थे। उस युग में बड़े-बड़े राजा धर्म-सिद्धी के लिए विशाल अश्वमेध यज्ञों का आयोजन किया करते थे। ये यज्ञ उनकी प्रतिष्ठा के मापदंड थे। ये प्रजा में परस्पर जुड़ाव और भावनात्मक एकता के माध्यम भी थे। संपूर्ण राज्य ऐसे राज-यज्ञों में भाग लेकर पवित्र द्रव्यों की आहुति देकर देश और समाज के कल्याण की कामना करता था। इससे सबको मानसिक सुख-शांति प्राप्त होती थी। समाज में सद्‌गुणों का सर्वव्यापी प्रसार होता था। असद् भावनाएं तिरोहित होती थीं। देश और समाज तिमिर से आलोक की ओर अधिक तेज गति से आगे बढ़ते थे। परस्पर सौहार्द की अभिवृद्धि होती थी।

महाराज अग्रसेन ने अपने वंशियों में गोत्र-प्रचलन कर एक ही गोत्र में विवाह-संबंध वर्जित कर तथा अन्य गोत्रों में वैवाहिक संबंध स्थापित करने का संदेश देकर समाज को सुदृढ़ और अटूट संगठन-सूत्र में आबद्ध कर दिया था। यही कारण है कि आज भी अग्र-वंश स्वस्थ और समृद्ध रूप में अस्तित्व में है। आज भी निकट के रक्त-संबंधियों में विवाह का अनुमोदन चिकित्साशास्त्री भी नहीं करते।

महाराज अग्रसेन के पुरोहितों और अमात्यों ने उन्हें अश्वमेध यज्ञ संपन्न करने का परामर्श दिया। महाराज सहमत हो गए। विशाल स्तर पर यज्ञों की तैयारी की गई। दूर-दूर तक के राजाओं को निमंत्रण भेजा गया। देश भर से बड़े-बड़े ऋषि-मुनि, विद्वान, मनीषी और राजागण यज्ञों में सम्मिलित हुए। स्वागताध्यक्ष का

दायित्व महाराज के अनुज शूरसेन ने स्वयं संभाल रखा था। स्वयं महाराज अग्रसेन यज्ञों के अधिष्ठाता थे।

इस प्रकार सत्रह यज्ञ विधिपूर्वक निर्विघ्न पूर्ण हो गए। उधर महाराज अग्रसेन के मन में अठारहवें और अंतिम यज्ञ से पूर्व यज्ञ में की जाने वाली पशु-बलि (अश्वमेध) को लेकर द्वंद्व उत्पन्न हो गया। वे सोचने लगे कि 'यज्ञ-जैसे पुनीत कार्य में पशु-बलि-जैसा अपवित्र कार्य क्यों हो? वैश्यों का कार्य तो सत्य और अहिंसा का पालन करते हुए पशुपालन और पशुरक्षा है। फिर उनकी बलि क्यों दी जाए ?'

इन बातों को लेकर उनके मन में विचारों का मंथन होने लगा। अंत में अहिंसा का विचार विजयी रहा। महाराज ने अब पशु-बलि न देने का मानस बना लिया। उन्होंने अपना मन्तव्य संबंधियों, अमात्यों, पुरोहितों और यज्ञ में उपस्थित जनों के समक्ष प्रकट कर दिया। पुरोहितों आदि ने समझाया कि अब मात्र एक ही यज्ञ संपन्न किया जाना है, इसे पूर्वानुसार विधिपूर्वक पूरा कर लिया जाए। इसे पूर्ण करके भले ही पशु-बलि को निषेध कर दिया जाए।

महाराज विचलित नहीं हुए। कहने लगे- 'आदरणीय भद्रजनों, मैं आप सबका हृदय से सम्मान करता हूं। निरीह पशुओं की बलि क्यों दी जाए ? यज्ञ एक अति पवित्र कर्म है। ऐसे में पशु-हिंसा जैसा अपवित्र कर्म क्यों किया जाए ? पशु-हिंसा भी एक प्रकार का पाप-कर्म ही है। पाप-कर्म से जितना बचा जाए, उतना ही अच्छा है। यदि हम किसी को जीवन-दान नहीं दे सकते तो किसी प्राणी के, चाहे वह पशु ही क्यों न हो, प्राण क्यों लें ? वैश्य वर्ग तो वैसे ही अहिंसा का पुजारी है। मुझे खेद है कि मेरे मन में अहिंसा का विचार पहले नहीं आया, नहीं तो पूर्व के यज्ञों में भी अश्व-बलि नहीं देने देता।'

पशु-बलि को लेकर महाराज अत्यन्त व्यथित थे। उनका निश्चय अटल था। पुरोहितों ने कहा- 'महाराज, यज्ञ का समय निकला जा रहा है। जैसा आप उचित समझें, कीजिए। यज्ञ को संपन्न करिए।'

महाराज के विचारों का प्रभाव वहां उपस्थित जन-समुदाय पर पड़ा। प्रायः सभी उनके विचारों से प्रभावित हो गए। हिंसा के प्रति उनके मन में ग्लानि उत्पन्न हो गई।

महाराज अग्रसेन ने यज्ञ-स्थल से घोषणा करते हुए कहा- 'अहं स्वभ्रातृन् पुत्रांश्च तथा कन्या कुटुंबिनः इदमेवोपदिशामि न कश्चिद्माचरेत- यज्ञ में पशु-हिंसा से मुझे ग्लानि हो गई है। अतः मैं अब अपने समस्त बंधु-बांधवों, पुत्रों, पुत्रियों, कुटुंबियों तथा वैश्यकुलों को यही संदेश देता हूं कि वे किसी भी प्रकार की हिंसा न करें। हिंसा की बात भी मुख से न निकालें और न ही मन में हिंसा की बात सोचें।'

महाराज के इस हृदय-परिवर्तन का कारण उनके अंतर में निहित अहिंसा और सर्वप्रेम ही था। वे मनुष्य तो क्या मूक-पक्षियों तक को पीड़ा पहुंचाने के पक्ष में नहीं थे।

उधर बाजे-गाजे के साथ लाया गया सजा हुआ अश्व बलिवेदी पर कातर

दृष्टि से देखता हुआ छटपटा रहा था। बलि की सारी व्यवस्था हो चुकी थी। महाराज ने बलि न देने का आदेश दिया। कुछ पुरोहितों ने समझाया कि बिना बलि के यज्ञ पूर्ण नहीं होगा। बाहर से आए कुछ राजा भी पुरोहितों के मन्तव्य से सहमत थे।

महाराज अग्रसेन नहीं माने। अहिंसा के निर्णय से वे नहीं डिगे। वे बोले- 'पशु-बलि देने से यज्ञ पूर्ण नहीं होता। वह तो पवित्र द्रव्यों-पदार्थों की आहुति देने और मंत्रोच्चार से पूर्ण होगा। हिंसा से ईश्वर भी प्रसन्न नहीं होगा।'

जो पुरोहित और राजा महाराज की इस अहिंसा-नीति से प्रसन्न नहीं थे, वे यज्ञ-स्थल से उठकर चले गए। महाराज ने फिर भी बिना पशु-बलि के ही यज्ञ पूर्ण किया, जिसे कुछ लोगों ने पूर्ण नहीं माना। परन्तु देवताओं ने प्रसन्न होकर द्रव्य को ग्रहण कर लिया और महाराज अग्रसेन को चक्रवर्ती सम्राट होने का वर दिया। उन्होंने महाराज के वंशधरों को सम्राट का चिह्न धारण करने की भी अनुमति दी।

यही कारण है कि महाराज के वंशधर अग्रजन आज भी इन चिह्नों-छत्र, अश्वारोहण, राजसी वस्त्र, साफा, चंवर, तलवार अथवा रजत-दंड आदि का प्रयोग विवाह के अवसर पर करते हैं।

यज्ञ में जो लोग महाराज की अहिंसा-नीति का विरोध कर रहे थे, वे लज्जित होकर क्षमा-याचना करने लगे। महाराज ने सहज भाव से सबको क्षमा कर दिया।

महाराज अग्रसेन ने यज्ञ में मुख्य भूमिका निभाने वाले गर्ग मुनि के नाम पर अपना प्रथम गोत्र 'गर्ग' रखा। अन्य में गोयिल ऋषि के नाम पर गोयल, कश्यप के नाम पर कुच्छल, कौशिक के नाम पर कंसल, वशिष्ट के नाम पर बिन्दल, मैत्रेय के नाम पर मित्तल, शांडिल्य के नाम पर सिंहल, जैमिनी के नाम पर जिन्दल, वत्स के नाम पर बंसल, मांडव्य के नाम पर मंगल आदि गोत्र-नाम रखे गए। कुछ लोगों ने अठारहवें यज्ञ को पूर्ण नहीं माना, अतः वे उसे आधा यज्ञ मानकर साढ़े सत्रह यज्ञ और इतने ही गोत्र मानते-कहते थे, शेष जन अठारह। महाराज अग्रसेन के जीवन में 'नौ' अंक का अत्यधिक महत्व रहा। गोत्र, रानियां, पुत्र, पुत्रियां, गण, यज्ञ आदि सभी की संख्या अठारह थी।

□□□

ग्यारह

महाराज अग्रसेन के अनुज और प्रतापनगर के नरेश शूरसेन भी प्रतापी और नीति-कुशल राजा थे। महाराज के शासन, अग्रोहा-राज्य की स्थापना आदि सभी कार्यों में उन्होंने पूरी योग्यता और निष्ठा के साथ कार्य किया था। उनके राज्य प्रतापनगर में सुख-शांति, समृद्धि थी। जब सब कुछ ठीक हो गया तो वे पर्यटन के लिए निकल पड़े। अग्रजश्री से उन्होंने इसके लिए अनुमति प्राप्त कर ली थी। तीर्थ-यात्रा करने का भी उनका विचार था। पर्यटन करते हुए अनेक तीर्थों पर भी वे गए। अनेक संतों से उपदेश ग्रहण करते हुए वे तीर्थयात्रा और पर्यटन करते रहे। लौटते समय वे मधुपुर (मथुरा) होकर आ रहे थे। उस समय वहां का राजा उरु अकर्मण्य था। जनता त्रस्त थी। राज्य में अराजकता और अशांति फैली हुई थी। प्रजा और राज्य दोनों श्रीहीन हो रहे थे। शूरसेन को वहां आने पर यह सब ज्ञात हुआ तो उन्हें इस राज्य की दुर्दशा पर दुःख हुआ। वे स्वयं नीतिकुशल और प्रजावत्सल थे। वे इस राज्य के हित की बात सोचने लगे।

उन्होंने राजा से मिलने के लिए संदेश भिजवाया। राजा उनके आगमन की बात सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुआ। वह स्वयं शूरसेन का स्वागत करने आया। जब वह शूरसेन से मंत्रणा कर रहा था तो कहने लगा- 'मैं स्वयं अशक्त और श्रीहीन हो गया हूं। अमात्यादि भी योग्य नहीं हैं। प्रजा की स्थिति मुझसे छिपी नहीं है। परन्तु मैं विवश हूं। आप मेरी सहायता करें। राज्य पर कोई दैवी प्रकोप नहीं है। आप मेरे प्रतिनिधि के रूप में शासन की बागडोर अपने हाथ में लेकर कार्य करिए। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप मुझे, मेरे राज्य और जनता को उबार लेंगे।'

शूरसेन ने सहमति व्यक्त कर दी। उन्होंने अयोग्य और परिग्रही अधिकारियों-कर्मचारियों को छांटकर सत्ता से पृथक् किया और उनके स्थान पर

योग्य और सेवाभावी व्यक्ति नियुक्त किए। राज्य का आय-व्यय-वितरण ज्ञात कर व्यवस्था में सुधार किए। सेना, आरक्षी-दल और न्याय-तंत्र को सुव्यवस्थित किया। सड़कों, भवनों, प्रासादों, दुर्ग आदि की मरम्मत कराई और प्रबंधन सुधारा। कृषि, व्यापार आदि की व्यवस्था पर भी ध्यान दिया। जो राजा मधुपुर पर आक्रमण करते रहते थे, शूरसेन ने उन पर आक्रमण करके उन्हें भी वश में कर लिया। अराजक तत्त्वों पर भी नियंत्रण किया। राज्य की सुरक्षा को सुदृढ़ बनाकर और आंतरिक व्यवस्था को नियंत्रण में लेकर शूरसेन ने राज्य में सुरक्षा, शान्ति और व्यवस्था स्थापित कर दी। राज्य और प्रजा का वैभव फिर बढ़ने लगा। वर्चस्व में भी वृद्धि होने लगी। राजा के साथ-साथ संपूर्ण प्रजा भी शूरसेन की कृतज्ञ हो गई। राजा ने शूरसेन से वहीं स्थायी निवास करने का अनुरोध किया। मधुपुर राज्य का नाम भी शूरसेन के नाम पर शौरसेन कर दिया। ब्रजभाषा शौरसेनी भी कहलाने लगी। महाराजा शूरसेन अब प्रतापनगर के साथ शौरसेन राज्य का शासन भी संभालने लगे।

* * * * * *

एक दिन राजप्रासाद के अंतरंग कक्ष में महारानी माधवी और महाराज अग्रसेन वार्तालाप कर रहे थे। माधवी ने कहा- 'महाराज, अब तो आपकी समस्त कामनाएं पूर्ण हो गईं। विशाल परिवार, सुदृढ़, सुखी और वैभवशाली साम्राज्य। राजकुमार भी सब योग्य हो गए। पुत्र वधुओं को भी संतानें हो गईं। महालक्ष्मी का पूजन करके धर्म, संयम, दानादि से पुण्य-संचय भी कर लिया। आपको तपस्वी, यशस्वी, वर्चस्वपूर्ण, कुशल एवं सहृदय महाराजा के रूप में जाना जाता है।'

सुनकर महाराज के मुखमंडल पर आभा बिखर गई। बोले- 'हां माधवी, तुम्हारा कथन सत्य है। सब कामनाओं और कार्यों से निवृत्त होकर हम विरक्ति और मोक्ष-अभियान की ओर अग्रसर हो रहे हैं। देखते ही देखते जीवन के नौ दशक दौड़ते हुए गुजर गए। पुरानी स्मृतियां स्वप्न बनकर उभरती हैं और तिरोहित हो

जाती हैं। जानती हो प्रिये, एक बार हमने एक अत्यन्त विचित्र घटना देखी थी।'

माधवी ने आश्चर्य से पूछा- 'कैसी विचित्र घटना ? जरा हम भी तो सुनें वह विचित्र घटना। बताइए न महाराज !'

महाराज पुरानी स्मृतियों में खो गए। कहने लगे- 'एक बार हम दल-बल सहित आखेट के लिए निकले थे। नया राज्य गठित करने और उसके लिए नई राजधानी बसाने का विचार मन में था। नई राजधानी के लिए उपयुक्त स्थल भी ढूंढ़ रहे थे। जब हम लोग अन्तर्वेद-प्रदेश में घूम रहे थे तो एक सिंहनी की पीड़ायुक्त गर्जना सुनाई दी। हम उस ओर गए तो देखा कि एक सिंहनी अपने बच्चे को जन्म दे रही थी। जन्म के कुछ क्षण पश्चात् ही वह सिंह-शावक उठा, दौड़ा और उसने

हमारे हाथी पर आक्रमण कर दिया। सब चकित थे। तब हमको ज्ञात हुआ कि वह भूमि ही वीर-प्रसूता थी। हमने वहीं पर नया नगर बसाकर राजधानी बनाने का निश्चय किया।'

महारानी ने कहा- 'सचमुच यह तो एक विचित्र घटना थी। महाराज, हमने तो यह भी सुना है कि एक बार भगवान परशुराम से भी आपका युद्ध हुआ था। यह कैसे संभव हुआ ? परशुराम तो त्रेतायुग में हुए थे और शिव-धनुष राम द्वारा भंग किए जाने पर क्रोधित होकर महाराज जनक की राजसभा में गए थे। अब तो कलिकाल आरंभ हो चुका है।'

महाराज बोले- 'हां, यह ठीक है। हमारा जिनसे युद्ध हुआ वे भगवान परशुराम के ही वंशधर रहे होंगे। उनकी वेशभूषा भी परशुराम के समान थी। वैसी ही दाढ़ी-मूंछ, वेश और हाथ में परशु। वे भगवान परशुराम का शेष कार्य पूर्ण कर रहे थे। एक बार जब हम राजवेश में आखेट के लिए वन में जा रहे थे तो उन्होंने हमें युद्ध के लिए ललकारा। हमने अश्व से उतरकर उन्हें प्रणाम किया और कहा कि हम साधु वेशधारी व्यक्ति से युद्ध नहीं करते। परन्तु वे न माने और युद्ध के लिए आगे बढ़ने लगे। विवश होकर हमें भी युद्ध करना पड़ा। चौदह दिवस तक भयंकर युद्ध होता रहा। न तो साधुवेशधारी वे परशुरामावतार पराजित हुए और न हमने हार मानी। हमारी वीरता को देखकर वे भी चकित थे। युद्ध रोककर वे परिचय पूछने लगे। उन्हें हमारे क्षत्रिय होने पर संदेह था। हमने उन्हें बता दिया कि हम वैश्य राज्य अग्रोहा के राजा अग्रसेन हैं। वे बोले- 'क्या वैश्य भी इतने वीर होते हैं ?' मैंने उन्हें प्रणाम किया और बताया कि अग्रोहा का तो हर निवासी ही वीर है, हम तो उन वीरों के राजा हैं।'

महारानी ने कहा- 'यह तो वास्तव में अद्‌भुत घटना है। आप पराक्रमी हैं, इसमें किसी को संदेह नहीं। आपकी वीरता पर मुग्ध होकर ही तो हमारे पिताश्री ने आपको अपना जमाता बना लिया।'

महाराज हंसकर बोले- 'अच्छा ! और तुमने हृदयेश्वरी .... ?'

उत्तर में महारानी मुस्करा दीं।

महाराज भी हंस पड़े। कहने लगे- 'वैश्य वर्ग व्यापार और व्यवहार में ही

निपुण नहीं हैं, वह वीर और परोपकारी भी हैं। 'विष्णु' शब्द भी विश् (व्यापार) और णु से बना है। वे ही इस वर्ण के प्रवर्तक हैं। राजा हरिश्चन्द्र, रोहिताश्व (रोहतक बसाने वाले), हमारे पूर्वज नल (दमयंती के पति), महाराज सगर और उनके पुत्र भगीरथ (भूलोक पर गंगा लाने वाले), रतिदेव, शिवि, मोरध्वज, द्रुपद आदि सब वैश्य राजा ही तो थे।'

महाराज अग्रसेन ने अनेक दशकों तक अग्रोहा पर कुशलतापूर्वक सेवाभाव से राज्य किया। शांति, वैभव, सुख और धर्म-कार्य में संपूर्ण राज्य ही चरमोत्कर्ष पर पहुंच गया था। एक बार वैशाख मास की चतुर्दशी की रात थी। महालक्ष्मी ने स्वप्न में महाराज को दर्शन दिए और कहा- 'वत्स, तुमने अपने सभी दायित्वों और धर्म-

कर्म को पूरा कर लिया है। तुम्हारे पुत्रगण भी योग्य हो गए हैं। राज्य में सुख-चैन, शांति और समृद्धि है। अब तुम वृद्ध हो गए हो। व्यवस्था के अनुसार अपने ज्येष्ठ पुत्र को सिंहासन पर बैठाकर तपोवन में जाकर तप कर मोक्ष-प्राप्ति करो। तुम्हारा कल्याण हो।' कहकर महालक्ष्मी अदृश्य हो गईं। महाराज की नींद खुल गई। वे स्वप्न पर विचार करने लगे।

दूसरे दिन पूर्णिमा थी। महाराज ने पुरोहितों और महामात्य को बुलाकर मंत्रणा की और ज्येष्ठ पुत्र विभु को राजपाट सौंप दिया। रानियों, परिवार और अन्य सभी से विदा लेकर महाराज तपस्या हेतु अग्रवन चले गए।

राजमाता माधवी की देखरेख में महाराज विभु राज्य-संचालन करने लगे। राजमाता ने कहा- 'वत्स विभु, तुम सब प्रकार से योग्य हो। मुझे पूरा विश्वास है कि पिताश्री की रीति-नीति और आदर्शों को तुम निरन्तर बनाए रखोगे। महालक्ष्मी की पूजा, नागवंशियों का सम्मान, प्रजा की सेवा और परिवार से प्रेम- ये सब बातें तुम्हारे स्वभाव में हैं, यह मैं जानती हूं।'

महाराज विभु बोले- 'हे राजमाता, आप मेरे स्वभाव को भली-भांति जानती हैं। आपने मुझे जन्म दिया है और पालन-पोषण किया है। आपके द्धारा दिए गए संस्कार मेरे रक्त में प्रवाहित हैं। हे मातेश्वरी, आप निश्चिन्त रहें। मैं पिताश्री की परंपराओं की रक्षा करूंगा। महालक्ष्मी के वरदान से मैं ही नहीं, आगे के वंशधर भी सौ वर्षों तक उनके आदर्शों का पालन करते रहेंगे।'

□□□

गाथा-महाराजा अग्रसेन को महालक्ष्मी के वरदान की

अग्रोहा में जुड़ी सभा थी, विभु नृपवर का पावन धाम।
ऋषि, मुनियों का सुखद आगमन, राजमहल की छटा ललाम॥
व्यास पीठि से गर्ग ऋषि जी, कहते अग्रकथा अभिराम।
दत्तचित्त हो सुनते विभु नृप, बने हुए जिज्ञासा धाम॥
हृदय प्रफुल्लित था राजा का, करता अग्रकथा रसपान।
सुनते थे नर नारी पुर के, परम ब्रह्म का करते ध्यान॥
मंगलमय वह शुभ दिन आया, कठिन तपस्या पूर्ण हुई।
प्रेम-मग्न श्री अग्रसेन थे, विमल चंद्रिका उदित हुई॥
शांत प्रकृति थी, मंद पवन, हरी-भरी थी वसुंधरा।
तारक गण दिखते नभमंडल, ज्यों मुक्ता का थाल भरा॥
अति पुलकित हो अग्रसेन, महालक्ष्मी का स्मरण करते।
आंखों में थे अश्रु भरे, मुक्तादल जैसे झरते॥
कहते अग्रसेन माता से, 'जग जननी दो अपनी भक्ति'।
परम ब्रह्म की महाशक्ति तुम, पा मां मैं तेरी अनुरक्ति॥
पूर्ण करो साधना हृदय की, सागर-तनया विष्णुप्रिया।
दर्शन दो अपना अम्बे, शांत करा संतप्त हिया॥
अखिल विश्व की तुम स्वामिनी हो, सब जग की कल्याणी।
दुर्गा, उमा, शारदा तुम हो, प्रगटो जग जननी॥
आलोकित हो गया गगन, एक प्रभा थी उदित हुई।
जगमग ज्योति जगी वसुधा पर महालक्ष्मी थीं प्रगट हुई॥
युग-युग में तू प्रगटित होती, करती जन उद्धार।
भक्तों की तू रक्षा करती, हरती वसुधा भार॥
अग्रसेन ने मंत्रमुग्ध हो, दर्शन कर सुख पाया।
जगजननी का दर्शन कर, अपना भाग्य सराहा॥
'उपवन देखा एक मनोहर, उसमें विशद सरोवर।'
निर्मल जल से भरा हुआ, शीतल, मधुर, मनोहर॥
अनगणित कमल खिले थे सर में, बहता शीतल मंद समीर।
स्वर्गिक सुख देता प्राणी को, हर दुखित हृदय की पीर॥
शतदल एक उगा था सुंदर, विस्तृत सर में शोभित था।
उस पर जग जननी बैठी थी, अद्भुत वह दर्शन था॥
श्वेत वर्ण के दो कुंजर थे, महालक्ष्मी के दोनों ओर।
करते थे अभिषेक सुहावन, बरसाते जल हुए विभोर॥
चतुर्भजाएं थीं जननी की, चारों दिशा सुशोभित थी।
आभूषण परिधान अलौकिक, अतुलनीय अनुपम छवि थी॥
मंद-मंद मुस्काती माता, लिए हस्त में शंख कमल।
तृतीय हस्त था उठा हुआ, चौथा देता आशीश विमल॥
अद्भुत आभा, रूप निराला, आकर्षक, मनमोहन था।
जगा प्रेम साधक के मन में, अनुपम वह दर्शन था॥
'हुई साधना पूर्ण तुम्हारी, नयन खोल कर देखो।
'कठिन तपस्या के दिन बीते, अंतर्मन से देखो॥
लखा अग्र ने जग जननी को, नमन किया हर्षाया।
चरणों में नत-मस्तक होकर, निज स्तवन सुनाया॥

'जगे भाग्य मेरे हैं जननी, अखिल विश्व की कल्याणी।
परमशक्ति तू आदि ब्रह्म की, तेरी अकथ कहानी॥
'युग-युग में तू प्रगटित होती, करती जन उद्धार।
उमा, शारदा, दुर्गा तू है, हरती वसुधा भार॥
ऋद्धि-सिद्धि मय तू कल्याणी, भक्ति-मुक्ति की दाता।
शत-शत नमन करूं मैं जननी, अम्बे शीश झुकाता॥
अति प्रसन्न हो महालक्ष्मी ने, अग्रसेन को अभय किया।
इंद्र रहेगा तेरे वंश में, माता ने वरदान दिया॥
'सर्वजगत में तेरा यश, बन सुगंध छाएगा।
भारत मां का तू सुपुत्र है, जन-जन को भाएगा॥
'छोड़ साधना, कठिन तपस्या, गृहस्थ धर्म का पालन कर।
होगा उत्थान अलौकिक, वैश्य धर्म धारण कर॥
लौट नगर अपने साधक, पालन कर तू अपना राज्य।
पहुंच कोलपुर अग्रसेन तू, जहां नागपति का साम्राज्य॥
परम सुंदरी नागसुता हैं, रूपवान गुणखान।
कर रही प्रतीक्षा वह तेरी, वर तू अग्र महान॥
अकस्मात भाग्योदय होगा, सुन नारद संदेश।
करो संधि तुम सुरपति से, मिटे हृदय का क्लेश॥
स्वर्गलोक के देव अमर हैं, प्रभु के भक्त महान।
छोड़ दो उनसे तू सुत, कर अपना उत्थान॥
लक्ष्मी व्रत का पालन कर, तूने निज़ कल्याण किया।
हरिश्चंद्र से सत्यव्रती ने, यह ही प्रण था पूर्ण किया॥
पाण्डवगण ने प्रण पालन कर, अपनी विपत्ति भगाई।
लक्ष्मी व्रत जो पालन करता, उसकी कीर्ति सवाई॥
अग्रसेन ने मंत्रमुग्ध हो, दर्शन कर सुख पाया।
माता का अवलोकन करके, अपना भाग्य सराहा॥
'हुई प्रसन्न पुत्र मैं तुझसे, होंगे सफल सभी अरमान।
अग्रवंश का बन संस्थापक, देती मैं तुझको वरदान॥
'होगा उत्कर्ष अनुपम, ऋद्धि-सिद्धि पाएगा।
अतुलित वैभव प्राप्त करेगा, राज्य सशक्त बनाएगा॥
एक नया गणराज्य बनेगा, अग्रवंश का पिता महान।
सृजन करेगा नवल संस्कृति, जगत करेगा तेरा गान॥
पाकर के अनुपम वर, अग्रसेन कृत-कृत्य हुए।
बीती निशा, दिवाकर प्रगटे, मनचाहे फल प्राप्त किए॥
किया ईश का वंदन सुखमय, आराधन मन भाया।
लक्ष्मी का वरदान जगत में, सुख संपत्ति वैभव लाया॥
गर्ग ऋषि ने नृपति विभु को, यह वृतांत सुनाया।
महालक्ष्मी के आराधन का, अग्रसेन गुण गाया॥
हुए प्रफुल्लित नृपति विभु, महा हर्ष पाया।
धन्य धन्य हैं गुरुवर पावन, कहकर शीश नवाया॥
अग्रवाल-जन भक्तिभाव से, जो कमला गुण गाए।
सुख संपत्ति को लहे सदा, कीर्ति अमित पाए॥

-साभार

महाराजा अग्रसेन एवं महारानी माधवी द्वारा महालक्ष्मीजी की आराधना

तव वंशे मही सर्वा पूरिता च भविष्यति तव वंशे जातिवर्णेषु कुलनेता भविष्यति
अद्यावभ्य कुले..... तव नाम्ना प्रसिद्ध्यति अग्रवंशीया हि प्रजाः प्रसिध्दाः भुवनत्रये
भुजि प्रसादं तव वसेत् नान्यस्मै प्रतिदापयेत् (१) येन सा सफला सिध्दिर्भूयात् तव युगे युगे
मम पूजा कुले यस्य सोऽग्रवंशो भविष्यति ॥

मार्ग शीर्ष शुक्ल पूर्णिमा श्री महालक्ष्मी का राजा अग्रसेन को आशीर्वाद

अग्रसेन-माधवी उपन्यास के लेखक

डॉ. विष्णु पंकज (अग्रवाल)

वरिष्ठ लेखक-पत्रकार, शोधकर्ता, विचारक, समाजसेवी। चार दर्जन पुस्तकों के लेखक-संपादक। पत्र-पत्रिकाओं में बड़ी संख्या में रचनाएं प्रकाशित तथा आकाशवाणी-दूरदर्शन से प्रसारित। पाक्षिक 'पत्रकार-लोक', मासिक 'अग्रजीवन' आदि के पूर्व संपादक। अनेक संस्थाओं के पदाधिकारी, संस्थापक और सदस्य। साक्षात्कार-विधा पर विशिष्ट शोधकार्य करके देश-विदेश में प्रथम पी.एच.डी. उपाधि प्राप्त की। प्रधान संपादक 'अग्रणी संदेश' मासिक, कोटा खुला विश्वविद्यालय के एम.जे. (एम.सी.) पत्रकारिता कोर्स के भाषा-संपादक।

प्रकाशित पुस्तकें : साक्षात्कार - हिन्दी इण्टरव्यू : उद्भव और विकास, चिरस्मरणीय भेंटवार्ताएं, जनसंचार की विधा साक्षात्कार, साक्षात्कार कोश, उल्लेखनीय साक्षात्कार, बातचीत, संवाद, मेरे साक्षात्कार, मेरे सवाल : उनके जवाब, यादगार मुलाकातें, मीडिया-इण्टरव्यू (भेंटवार्ता)।

पत्रकारिता - भाषायी पत्रकारिता और जनसंचार, राजस्थान के पत्र और पत्रकार, हिन्दी-पत्रकारिता का सुबोध इतिहास।

जीवनी - हरिभाऊ उपाध्याय : व्यक्तित्व और कृतित्व, स्वाधीनता-सेनानी अर्जुनलाल सेठी, एक कर्मठ व्यक्तित्व, क्रान्तिकारी पत्रकार। **अभिनंदन ग्रंथ** - संघर्षचेता पत्रकार, अलौकिक प्रज्ञापुरुष, भीखाभाई अभिनंदन ग्रंथ। **स्मृति ग्रंथ** - राजस्थान केसरी विजयसिंह पथिक स्मृतिग्रंथ। **उपन्यास** - राखी और सिन्दूर (अप्राप्त), अंधेरा उजाला, सारिका ('अंधेरा उजाला का गुजराती अनुवाद), टूटा हुआ आदमी (हिन्दी और उर्दू में), सूरज की रोशनी, रंभा (गुजराती से हिन्दी-अनुवाद), अग्रसेन-माधवी। **कहानी संग्रह** - बिस्मिल की बीबी (१९९५), कालिन्दी (प्रेस में) कविता संग्रह - इन्द्रधनुष (अप्राप्त), अहसास (प्रेस में)। एकांकी संग्रह - संतिया पागल हो गई (अप्राप्त)।

विविध - नवरंग (नौ विधाएं), साहित्य-साधक शरद देवड़ा (संपादित), सुशीला पंजवानी की कविताएं (संपादित), एक आश्चर्यलोक, रीतिकाव्य किरण (पाठ्यक्रम, बी.ए. द्वितीय वर्ष, हिन्दी-साहित्य, राजस्थान विश्वविद्यालय), आदर्श विद्यार्थी आदि। लेखनाधीन - आपबीती (आत्मकथा), आधुनिक हिन्दी-साहित्य, भारतीय भाषाओं में साक्षात्कार आदि।

संपर्क सूत्र - १२०/१७९, विजयपथ, अग्रवाल फार्म, मानसरोवर, जयपुर-३०२०२० (राजस्थान)

'अग्रसेन-माधवी' उपन्यास के प्रथम संस्करण का विमोचन

अग्रचिंतन प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'अग्रसेन-माधवी' उपन्यास के प्रथम संस्करण का विमोचन दिसंबर-२००३ में पुणे में आयोजित महाराष्ट्र राज्य अग्रवाल सम्मेलन के प्रांतीय अधिवेशन के मुख्य समारोह में उपस्थित महानुभाव अतिथियों के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। चित्र में बाएं से दाएं सर्वश्री किशनकुमार गोयल (अधिवेशन संयोजक), विजय कुमार चौधरी (अध्यक्ष-महाराष्ट्र राज्य अग्रवाल सम्मेलन), संतोष कुमार बागड़ोदिया (सांसद), अरुण गुजराती (तत्कालीन विधानसभा अध्यक्ष महाराष्ट्र), बनारसीदासजी गुप्ता (संरक्षक-अ.भा.अग्रवाल सम्मेलन) तथा श्री प्रदीप मित्तल (अध्यक्ष-अ.भा. अग्रवाल सम्मेलन) अपने-अपने हाथों में 'अग्रसेन-माधवी' उपन्यास प्रस्तुत करते हुए।

ऑफसेट प्रिंटिंग : महालक्ष्मी ऑफसेट प्रिंटर्स, सेंट्रल बाजार रोड, रामदासपेठ, नागपुर-४४० ०१०.
फोन : २५४२१९३, मो. ९४२२१०४६१०